ISSN-0971-8397

योजना

विशेषांक | अगस्त 2012 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 20

आज़ादी के 65 वर्ष

क्षेत्रवार विश्लेषण

प्रणब मुखर्जी बने देश के तेरहवें राष्ट्रपति

श्री प्रणब मुखर्जी गत 22 जुलाई को देश के 13वें राष्ट्रपति चुन लिए गएं। सप्रग के उम्मीदवार श्री मुखर्जी को 7 लाख 13 हज़ार 763 मत मूल्य मिले जबकि भाजपा समर्थित निर्दलीय प्रतिद्वंद्वी श्री पी.ए. संगमा को मात्र 3 लाख 15 हज़ार 987 मत मूल्य हासिल हुए।

अपने समर्थकों के बीच 'दादा' नाम से पुकारे जाने वाले श्री मुखर्जी देश के 'राष्ट्रपति' पद पर पश्चिम बंगाल से पहुंचने वाले पहले व्यक्ति हैं। देश का राष्ट्रपति चुने जाने के बाद श्री प्रणब मुखर्जी ने देशभर से मिले समर्थन के लिए सभी का आभार जताया।

भारत और भारतीयता के ताने-बाने को पूरी तत्परता और तार्किकता से समझने में सक्षम, राजनीति के शब्दकोश के ज्ञाता, सत्ता के गलियारों में मान्य संकट मोचक प्रणब मुखर्जी का राष्ट्रपति चुना जाना एक सुखद संकेत माना जा रहा है।

श्री प्रणब मुखर्जी का जन्म पश्चिम बंगाल के वीरभूम जिले के किरनाहर शहर के निकट मिराती गांव में एक ब्राह्मण परिवार में कामदा किंकर मुखर्जी और राजलक्ष्मी मुखर्जी के बेटे के रूप में हुआ। उनके पिता 1920 से कांग्रेस पार्टी में सक्रिय थे एवं एक सम्मानित स्वतंत्रता सेनानी भी थे, जिन्हें ब्रिटिश शासन की ख़िलाफ़त के लिए 10 वर्षों से अधिक समय के लिए जेल भेजा गया था।

श्री प्रणब मुखर्जी ने कोलकाता विश्वविद्यालय से इतिहास और राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर के साथ-साथ कानून की डिग्री हासिल की है। वे एक वकील और कॉलेज प्राध्यापक भी रह चुके हैं। उन्हें मानद डी. लिट उपाधि भी प्राप्त है। श्री मुखर्जी ने एक कॉलेज प्राध्यापक के रूप में और बाद में एक पत्रकार के रूप में अपना करियर शुरू किया। उन्होंने जाने-माने बांग्ला प्रकाशन संस्थान देशेर डाक (मातृभूमि की पुकार) के लिए काम किया। वे बंगीय साहित्य परिषद के ट्रस्टी और बाद में निखिल भारत बंग साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने।

13 जुलाई, 1957 में सुर्वा मुखर्जी से उनकी शादी हुई और उनके दो बेटे और एक बेटी हैं। पढ़ना, बागवानी और संगीत उनके शौक रहे हैं।

उनका संसदीय करियर क़रीब पांच दशक पुराना है, जो 1969 में कांग्रेस पार्टी के राज्यसभा सदस्य के रूप में (उच्च सदन) शुरू हुआ और वह 1975, 1981, 1983 और 1999 में फिर से चुने गए। 1973 में वे औद्योगिक विकास विभाग के केंद्रीय उप मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में शामिल हुए।

(शेषांश कवर III पर)

योजना

वर्ष : 56 • अंक : 8 • अगस्त 2012 • श्रावण-भाद्रपद, शक संवत 1934 • कुल पृष्ठ : 76

प्रधान संपादक
रीना सोनोवाल कौली

संपादक
रेमी कुमारी
जयसिंह

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी.के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : रूबी कुमारी

इस अंक में

संपादकीय	–	5
आज़ादी के सातवें दशक की चुनौतियां	कमल नयन काबरा	6
महिलाओं हेतु नियोजन की चुनौतियां	निर्मला बुच	9
स्वतंत्रता के 65 वर्ष	आर.सी. राजामणि	13
कृषि विकास : एक विश्लेषण	सुरिंदर सूद	17
भारत में अधोसंरचना विकास	नमिता मेहरोत्रा	19
भारत में शिक्षा व्यवस्था : 1947-2012	जे.वी. विलानिलम	24
भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम प्रगति पर	राधाकृष्ण राव	29
भारत में संचार क्रांति का असर	अरविंद कुमार सिंह	33
65 साल की आज़ादी में छुपे सवाल	प्रियदर्शन	37
महादलित की विकासगाथा	अनिल चमड़िया	39
संसदीय लोकतंत्र के 65 वर्ष	देवेंद्र उपाध्याय	41
साढ़े छह दशक के विकास के हासिल	रहीस सिंह	45
क्या आप जानते हैं? : हिग्स बोसोन क्या हैं?	–	48
प्रगति पथ पर भारत	नवीन पंत	49
कला एवं संस्कृति का सुहाना सफ़र	देव प्रकाश चौधरी	52
भारत में प्राथमिक शिक्षा	कौशलेंद्र प्रपन्न	55
झरोखा जम्मू-कश्मीर का : महिला सशक्तीकरण की बेजोड़ मिसाल है: लद्दाख	पदमा डेचिन	57
ओलंपिक खेलों में भारत	योगेश चंद्र शर्मा	60
शोधयात्रा : शोध के लिए समर्पित जीवन	–	63
अनुकरणीय पहल : समृद्ध संस्कृति की मिसाल	जिगमत लामो	66
सुशासन, ग़रीबी तथा लोकतंत्र : एक वैचारिकी	अनीता सिंह	68
राजनय : म्यामां की अर्थव्यवस्था और भारत	ओ.पी. शर्मा	69
मंथन : समय, साहित्य और साहित्यकार	सरोज कुमार वर्मा	71

योजना **हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष :** 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक :** ₹ 180; **त्रैवार्षिक :** ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 500; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** ₹ 700। ***योजना*** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

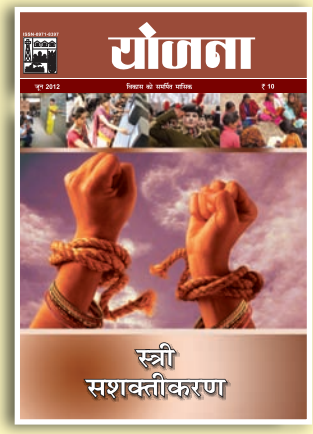

आपकी राय

सशक्तीकरण की मौन क्रांति

स्त्री सशक्तीकरण पर आधारित जून' 12 अंक पढ़ा। स्त्री सशक्तीकरण से अभिप्राय है– हर क्षेत्र में स्त्री की उपस्थिति। हालांकि कुछ क्षेत्रों में नारी ने अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराई है।

पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण है। इस वजह से आज महिलाओं ने राजनीति की ओर क़दम बढ़ाएं हैं। राजस्थान पर दृष्टिपात करें तो महिला साक्षरता न्यून है। इसके कारण सरपंच व पंच महिलाएं सिर्फ़ नाम के लिए सरपंच हैं। पंचायतों का अधिकतर काम उनके पति करते हैं। मन्नालाल मीणा जी का आलेख 'सशक्तीकरण की मौन क्रांति' उपर्युक्त संदर्भ में सटीक लगा।

'सत्यमेव जयते' नामक टीवी धारावाहिक आज के भारत की यर्थात तस्वीर है। आमिर खान की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी कम है। कन्या भ्रूण हत्या समाज पर कलंक है। इसके लिए नारी के साथ-साथ समाज भी जिम्मेदार है। डॉक्टर भगवान के बजाय राक्षस बन गए हैं। नारी को आज अपनी रक्षा स्वयं करनी ही होगी। क्योंकि जब दिल पर लगेगी तभी बात बनेगी। आमिर का मक़सद हंगामा खड़ा करना व पैसा कमाना नहीं है वे तो स्वस्थ भारत निर्माण की सोच रखते हैं।

संसद की प्रथम बैठक को 13 मई, 2012 को 60 वर्ष पूरे हो गए हैं। संसद की गरिमा ही लोकतंत्र का आधार है। सांसदों का चयन जनता करती है। उन्हें जनता की भावनाओं को समझना चाहिए एवं उनका सम्मान करना चाहिए।

भारत का ताज़ 'जम्मू-कश्मीर' बारूद की गूंज व आतंकवाद के दंश के बावजूद आज युवाओं में प्रशासनिक रुझान के लिए चर्चित है। केसर-सेब के बागान व बर्फ़ के मैदान आतंकवादियों की बजाय मुल्क़ को आईएएस की एक नयी पैदावार दे रहा है। इस बार 10 युवाओं का चयन आशा की एक नयी किरण है। कश्मीर के युवाओं में अब नया जोश जगा है। जीतने वाले कुछ अलग नहीं करते हैं बल्कि काम को अलग ढंग से करते हैं। आतंकवाद के उन्मूलन में कश्मीर की अवाम को भी आगे आना चाहिए।

ऋतु सारस्वत व अमृत पटेल के आलेख भी अच्छे लगें।

रणवीर चौधरी 'विद्यार्थी'
सांजटा, बाड़मेर, राजस्थान
ई-मेल : choudharyranu@rocketmail.com

ज़रूरत सकरात्मक दृष्टिकोण की

स्त्री सशक्तीकरण पर आधारित जून अंक पढ़ा। अंक के सभी लेख अच्छे और समस्याओं के प्रति जागरूक करने वाले लगें। मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा की तैयारी कर रहा हूं। इस पत्रिका के माध्यम से मैं अपनी लेखन क्षमता बढ़ा पा रहा हूं। हिंदू सभ्यता में स्त्रियों को अत्यंत आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता में माता को देवी के समान सर्वोच्च पद प्रदान किया गया, जो समाज में उन्नत स्त्री दशा को दर्शाता है। ऋग्वैदिक काल में भी स्त्री को समाज में आदरपूर्ण स्थान दिया गया था। उसके सामाजिक और धार्मिक अधिकार पुरुष के बराबर ही थे। विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था। दंपत्ति घर के संयुक्त अधिकारी होते थे। कन्या को भी पुत्र के समान शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त थी। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था एवं वे भी ब्रह्मचर्य जीवन का निर्वहन करती थीं। ईश्वरों के नामों में भी देवियों का नाम ही पहले आता है जैसे- राधे श्याम, सीता राम इत्यादि। *ऋग्वेद* में बृहस्पति तथा उनकी पत्नी जुहू की कथा मिलती है। बृहस्पति

अपनी पत्नी को छोड़कर तपस्या करने गए किंतु देवताओं ने उन्हें बताया कि पत्नी के बिना अकेले तप करना अनुचित है, यह दर्शाता है कि स्त्री भी पुरुष की ही भांति तप करने की अधिकारिणी थीं।

समाज अपने स्वभाव, चरित्र और ढर्रे में पूर्ण रूप से पित्रसत्तात्मक है। सीमोन द बोउआर ने अपनी पुस्तक द *सेकंड सेक्स* में लिखा है कि ''अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी लिखा उस पर शक किया जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी दोनों ही हैं।'' इसलिए सीमोन कहती हैं कि हर जगह और हर समय पुरुष ने यह कहकर प्रदर्शन किया कि वही जगत का सर्जक है। सीमोन प्लूटो का हवाला देते हुए कहती हैं कि प्लूटो ने ईश्वर की सबसे बड़ी कृपा यह मानी थी कि वह गुलाम नहीं था और दूसरी कृपा यह भी थी कि वह पुरुष बना, औरत नहीं। प्लूटो का यह कथन महिलाओं की हुई स्थिति को दर्शाता है।

भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, प्रति 24 मिनट में एक महिला यौन शोषण, प्रति 43 मिनट में अपहरण, प्रति 54 मिनट में बलात्कार का शिकार हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार प्रति 8 सेकंड में एक महिला यौन शोषण तथा प्रति 6 मिनट में एक महिला का बलात्कार होता है। हालांकि सरकार ने विभिन्न योजनाएं चलाकर महिला सशक्तीकरण का प्रयास किया है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों और नगर-निकायों में महिलाओं को आरक्षण देकर महिला सशक्तीकरण किया गया है। किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। महिलाएं समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। आने वाले कल को सुधारने के लिए हमें आज महिलाओं की स्थिति को सुधारना होगा। इसके लिए हमें रुढ़िवादी दृष्टिकोण से ऊपर उठकर एक नया विकासवादी सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत है।

जम्मू-कश्मीर से भारतीय प्रशासनिक सेवा में 10 युवाओं का चुना जाना घाटी में परिवर्तन कि हवा को दर्शाता है। 'प्रसंगवश' में अभिनेता आमिर खान द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला धारावाहिक 'सत्यमेव जयते' पर लिखा गया लेख भी काफी अच्छा लगा। वास्तव में इस कार्यक्रम ने लोगों कि अंतरात्मा को जागृत करने का काम किया है। मेरी ई जॉन, ऋतु सारस्वत, ममता मोहन, राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष ममता शर्मा, अमृता पटेल, रश्मि सिंह सहित सभी लेखकों के लेख अच्छे और ज्ञानोपयोगी लगें। ❑

अमित कुमार गुप्ता
रामपुर नौसहन, हाजीपुर, वैशाली, बिहार
ई-मेल : kramitkumar2@gmail.com

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण / पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक (100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये)

❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता :.....
.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें :.....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर ***निदेशक, प्रकाशन विभाग*** के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV, सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

India's No. 1 Result Oriented Institute

KAIVALYA™ INSTITUTE

Kaivalya

A Division of Pink Pearl Events Pvt. (Ltd.)

IAS/PCS 2012-13 AND 2014

सामान्य अध्ययन I & II

मुख्य-सह-प्रारंभिक परीक्षा

3 दिवसीय निःशुल्क कक्षा कार्यक्रम

10 - 12 AUG
10 AM & 6 PM

द्वारा प्रदीप कुमार एवं टीम

COMPULSORY ENGLISH

CLASS STARTS 16 AUG 7:30 AM 7:30 PM

FOUNDATION COURSE
AIM : 100% SELECTION
ADMISSION : THROUGH TEST & INTERVIEW
DURATION : 12 MONTHS
UPPCS/ RAS/ HARYANA PCS (MAINS)

विज्ञान व प्रौद्योगिकी व पर्यावरण अध्ययन
25 AUG 2 : 30 PM

भूगोल द्वारा प्रदीप कुमार

इतिहास द्वारा अजीत झा

लोक प्रशासन द्वारा कुनाल ठाकुर

SOCIOLOGY By C. V. Rao

ENGLISH LIT. By A .K. SHISHODIA

सांख्यिकी द्वारा सुरेश कुमार

1. प्रत्येक दिन 30 मिनट समसामयिक मुद्दों पर चर्चा
2. हर शनिवार लिखित परीक्षा व संदेह निवारण
3. Daily news/paper magazine analysis
4. लेखन कला व शैली का विकास
5. साक्षात्कार को केंद्रित करते हुए व्यक्तित्व विकास
6. Notes with Diagram, charts, and lesson plan

WEEKEND BATCH FOR WORKING PEOPLE

EARLY MORNING : 7 AM & LATE EVENING : 6 PM BATCH

OUR TOPPERS

HOSTEL & LIBRARY

DIRECTOR MS. NUTAN

CSE-2011 AIR-29 Prashant Sharma

CSE-2011 AIR-221 Vijay Dhull

CSE-2011 AIR-362 Sachindra Patel

UPPSC - 2009 RANK-52 Rajeev Tyagi

UPPSC - 2009 RANK-12 Jitender Kumar Rai

MPPSC- 2011 Anjana Nagar

A-22, M. Floor, Savitri Bhawan, Behind Batra Cinema, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi 9

Ph:- 011-27650101, 9013013600, 9971703383

E-mail kaivalyainstitute@gmail.com www.kaivalyainstitute.com

YH-88/2012

संपादकीय

प्रतिवर्ष हम स्वतंत्रता दिवस सम्मानपूर्वक मनाते हैं और शहीदों तथा स्वतंत्रता सेनानियों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। यह वह समय होता है जब हम अपनी उपलब्धियों, सफलताओं और विफलताओं के बारे में आत्मचिंतन करते हैं और भावी यात्रा का मार्ग तय करते हैं। भारत के इतिहास एवं सभ्यता की लंबी यात्रा में, 65 वर्ष की स्वतंत्रता महज़ एक छोटा-सा क़दम है।

भारत में राजनीतिक लोकतंत्र का उद्भव बड़ा अनूठा और सर्वथा अलग तरह का रहा है। भारत के संविधान ने लोकतांत्रिक गणतंत्र को जन्म एवं आकार दिया और न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं सभी नागरिकों के बीच सौहार्द्र का संकल्प लिया। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार हमें एक झटके में मिला और वंचित और कमज़ोर वर्गों के पक्ष में सार्थक कार्रवाई के लिए संविधान में व्यवस्था की गई।

स्वतंत्रता के उषाकाल में भारत के आर्थिक विकास को उसके औपनिवेशिक अतीत और राष्ट्रवादी वर्तमान ने मिलकर राह दिखाई। विकास प्रक्रिया में राज्य (सरकार) को प्रधान भूमिका सोच-समझकर दी गई थी ताकि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ हमारा एकीकरण हो सके। विकास का पर्याय होने के नाते औद्योगीकरण के बढ़ते लाभ पर सहमति थी। इस दौरान, औद्योगिक विकास के अतिरिक्त, निर्धनों और शोषितों को विकास प्रक्रिया में साथ लाने के लिए क़दम उठाए जाते रहें। भूमि सुधार कानून बनाए गए, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किए गए और पंचायतीराज संस्थाओं को प्रोत्साहित किया गया। सरकार ने जो नियोजन प्रक्रिया अपनाई, उससे 1954-55 से 1964-65 के बीच भारत का तीव्र औद्योगिक विकास हुआ। अगले दस वर्षों में औद्योगिक विकास में गिरावट आने लगी और भारत के सामने प्राय: भुगतान संतुलन का संकट उपस्थित होने लगा। वर्ष 1991 में सुधारों का युग शुरू हुआ। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, आयात में स्पर्धा बढ़ाने और विकास संभावनाओं में वृद्धि के लिए अनेक सुधारात्मक क़दम उठाए गए। इन आर्थिक सुधारों के बाद, भारत विश्व अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख देश के रूप में उभरा है। परंतु इसके साथ ही नयी चुनौतियां मिली हैं और उत्तरदायित्व बढ़ा है। भारत के साथ एक विशेष लाभ की स्थिति यह रही है कि अनेक आर्थिक संकेतक इसके पक्ष में रहे हैं। विशाल घरेलू दर, सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में भारी निवेश और जनसंख्या का लाभ विशेष रूप से भारत के पक्ष में रहे हैं। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं, इसके लिए भारत को आंतरिक चुनौतियों से निपटना होगा। चिरकाल से चली आ रही निर्धनता और देश के सामाजिक और भौतिक विशेषताओं का विकास, इसमें प्रमुखता से शामिल हैं।

आज निर्धनता और अन्य असमानताओं में कमी लाने तथा आर्थिक विकास को गति देने के लिए समावेशी विकास को महत्व दिया जा रहा है। समावेशी विकास को हासिल करने और उसमें सुधार के लिए समानता, कृषि विकास, आर्थिक सुधार और अवसरों की समानता पैदा करने की आवश्यकता है। साक्षरता, स्वास्थ्य, निर्धनता, महिला विकास और क्षेत्रीय असमानता की चुनौतियों का सामना करना होगा ताकि समावेशी विकास साकार रूप ले सके। निर्धनता की समस्या को दूर करने के लिए अनेक निर्धनता प्रशमन कार्यक्रमों को लागू किया गया है।

विश्व जनसंख्या के छठवें भाग को अपने में समेटे भारत के सकल घरेलू उतपाद के संदर्भ में, अगले दो दशकों में विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की संभावना जताई गई है। वर्तमान में, चीन के साथ भारत विश्व की सबसे तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। अर्थव्यवस्था का सतत विकास अधोसंरचना के सतत विकास पर निर्भर है। भारत में अंतरिक्ष, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में भारी उपलब्धियां हासिल की हैं।

योजना के इस विशेष अंक में, हमने इन क्षेत्रों में से कुछ पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। योजनाओं के दौरान हुई प्रगति और उपलब्धि के साथ सामने आने वाली चुनौतियों की भी विवेचना की गई है। ❑

आज़ादी के सातवें दशक की चुनौतियां

● कमल नयन काबरा

जवाहरलाल नेहरू द्वारा संचालित एक दैनिक समाचार-पत्र में हर दिन पहले पन्ने पर सबसे ऊपर छापा जाता था 'इंटरनल विजिलेंस इज द प्राइस ऑफ फ्रीडम।' अर्थात निरंतर जारी जागरुकता द्वारा आज़ादी का मोल चुकाना होता है। ज़ाहिर है किसी भी इंसान या समाज के लिए आज़ादी एक अनमोल उपलब्धि और धरोहर है। सदियों तक अपने जन्मजात अधिकार से वंचित लोग और राष्ट्र ऐसी अमूल्य स्वाधीनता प्राप्ति के अवसर का हर साल जश्न मनाए यह सर्वथा स्वाभाविक है और ज़रूरी भी। शाश्वत जागरुकता की लौ टिमटिमाकर बुझे नहीं यह सुनिश्चित करने में जश्ने-आज़ादी का बड़ा हाथ होता है। किंतु जलसों-जुलूसों के हर्षोल्लास के बाद अपने अंदर झांकने, अपने आस-पास नज़र दौड़ाने का वक़्त आता है। हमने क्या किया, कैसे और क्यों किया तथा कैसे पर्याप्त या अपर्याप्त या आंशिक नतीज़े प्राप्त किए, कितने साधन और क्षमताएं लगाए तथा इन संसाधनों तथा उनके इस्तेमाल के तरीक़ों और प्राप्त परिणामों में कैसा तालमेल या रिश्ता है आदि अनेक सवालों पर विचार करने का एक उपयुक्त मौका आज़ादी की वर्षगांठ होती है। ऐसी सम्यक विचार ही आज़ादी की लौ का प्रकाश फैलाने के लिए ज़रूरी शर्त है। भारतीय लोकतंत्र ने राष्ट्रीय विकास के लिए योजनाबद्ध प्रयासों का रास्ता अपना रखा है। योजना की एक विशेषता होती है। पूरे राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के सभी पक्षों के बेबाक विवेचन के आधार पर निर्णय। अगले क़दम उन क़दमों की दिशा और उन्हें उठाने के तौर-तरीक़ों, कर्ता-धर्ताओं, अपेक्षित लाभान्वितों की तथा प्रयासों और संसाधनों की उपलब्धि कराने वालों की पहचान आदि भी वर्तमान स्थिति के गहन परीक्षण के योजनाबद्ध तरीक़ों के आवश्यक अंग हैं। हम दोषों-खामियों और कमियों को पहचानें, उनके लिए जिम्मेदारी सुनिश्चित करें, किंतु यह नहीं भूलें कि हम एक लोकतांत्रिक देश और समाज के नागरिक हैं। हम एक राज्य-राष्ट्र हैं और हमें लोकतांत्रिक सक्रिय भागीदारी के माध्यम से इस राज्य-राष्ट्र को राष्ट्र-राज्य बनाना है। एक समन्वित, सर्व समावेशी, संतुलित और सातत्यपूर्ण समाज या राष्ट्र-राज्य अपनी क्षमताओं को विकसित करके उन्हें सर्वसुलभ बनाने का एक आम उपक्रम और प्रभावी प्रयास होता है। हमारी कमियों और खामियों में कमोबेश, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हम सबका हिस्सा होता है। हम मिलकर सरकारें चुनते हैं, तो फिर सरकारों के दोषों से हम अपने को पूरी तरह कैसे अलग कर सकते हैं। किंतु यदि हमारा लोकतंत्र सर्वसमावेशी नहीं बन पाया है, क्षमताओं, संसाधनों, भूमिका आदि का वितरण असमान है तो दोषारोपण या जिम्मेदारी में सबकी भागीदारी बराबर कैसे मानी जा सकती है। किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक व्यवस्था ने हमें लगातार परिवर्तन करने, अधिकारों और जिम्मेदारियों तथा लाभों आदि सभी में समन्वित भागीदारी हासिल करने के रास्ते दिए हैं। हमारी योजनाओं का एक बड़ा मकसद समावेशन बढ़ाना है। इस समावेशन के स्वरूप, संभावनाओं और तौर-तरीक़ों पर गहन, बेबाक चिंतन की ज़रूरत है।

जब 8 बजे आजादी के जयकारे, ढोल-मजीरों और नगाड़ों की प्रतिध्वनियां हमारे मानस के यादगार खानों में जमा होने चले जाएंगे तो हमें अपने दिलो-दिमाग और बहुमुखी सामाजिक चेतना और समझ को कुछ गंभीर सर्वांगीण चिंतन में लगाना होगा। योजनाबद्ध विकास पथ के राही लोकतांत्रिक समाज के

नागरिकों के कर्त्तव्यों का अनुपालन निजी पारिवारिक सरोकारों को राष्ट्रीय सामाजिक सरोकारों के पटल पर ही नहीं उनके मातहत देखना-खोजना होता है। इसके विपरीत जब हमारे निजी सरोकारों-स्वार्थों को पूरा करने के जरिये ही हम राष्ट्रीय सामाजिक हितों की पहचान करने में निरत रहते हैं तो निश्चित है की हम *माया मिली न राम* की तरह दोनों लक्ष्यों से दूर होते चले जाएंगे। बाज़ार में बड़े फ़ैसले लेने वाले निजी उद्यमी तब सामाजिक उद्यमिता से और अपने श्रम, कौशल और लगन के धनी नागरिक अपनी आर्थिक उत्पादिता बढ़ाने की फिराक़ में आर्थिक वित्तीय लक्ष्यों तथा अपने सामाजिक ज़रूरतों के लक्ष्यों और उपादानों के बीच की खाई को गहरी और चौड़ी करते चले जाएंगे। आज़ादी के बाद के दशकों की हमारी साझी सहयात्रा के आनंददायक और विवादकारी अनुभवों और याददाश्तों के चंद पहलुओं की ओर यहां हम इशारा भर करेंगे ताकि ऊपर वर्णित खाई को पाटने के प्रयासों को पहचानने में मदद मिले।

सन 1991 में देश की आर्थिक-सामाजिक नीतियों और लक्ष्यों को एक नया रूप ही नहीं उन्हें एक भिन्न किस्म का चरित्र भी दे दिया गया। इन नीतियों के कार्यान्वयन और मीडिया प्रबंधन से जुड़े एक व्यक्ति ने एक वाक्य में इस नीति के चरित्र का खुलासा कर दिया है।

कहा गया है कि पिछले तीन दशकों से 'ग्रोथ ऑफ द नेशनल केक' (राष्ट्रीय आय की वृद्धि) के काम को एक धर्म की तरह निभाया गया है। इस तरह एक बड़े और जगज़ाहिर सच्चाई को रेखांकित किया गया है। पिछले दो-एक साल से इस धर्म पालन में आई रुकावट को सभी स्वीकारते हैं। चाहे इसके लिए बड़ी कंपनियों के कर्णधारों की 'एनिमल स्पिरिट्स' को जिम्मेदार माना जाए अथवा इन लोगों द्वारा प्रचारित 'पॉलिसी पैरेलाइसिस' को। इस धर्म के साथ अनिवार्य रूप से जुड़े सारे तामझाम का असली लब्बोलुआब साफ़ है। मसलन:

- हमारे गांवों के क़रीब 60 फीसदी लोग प्रतिदिन 35 रुपये से कम पर और शहरियों का भी क़रीब इतना ही अनुपात प्रतिदिन 66 रुपये पर ही अपना गुज़र-बसर करते हैं।
- 2011-12 का राजकोषीय घाटा सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 6-9 प्रतिशत ही रहा है।
- महंगाई की दर कई सालों से दहाई का आंकड़ा छू रही है। यद्यपि बाज़ार में लोगों को सामान की तंगी देखने और क्यू लगाने की जहमत नहीं उठानी पड़ रही है।
- विदेशी लेन-देन के चालू खाते का घाटा राष्ट्रीय आय के 4 प्रतिशत से ऊपर चल रहा है और करीब 300 ख़रब के विदेशी मुद्रा भंडार के बावजूद इस साल डॉलर के मुक़ाबले हमारे रुपये का तीस प्रतिशत के करीब अवमूल्यन हो गया है।
- बचत और निवेश की सुस्ती के बावजूद हमारी कंपनियों ने विदेशों में भारी और अहम् खासियत वाले निवेश किए हैं और यह प्रक्रिया बल पकड़ रही है।
- कारों, महंगी अट्टालिकाओं, महंगे विलासिता के साजो-सामान का उत्पादन और उपभोग काफी बढ़ा है। जिसका एक नतीजा ऊर्जा के बढ़ते आयात और ऊंचे दामों में नज़र आता है।
- सरकारी बजट से सामाजिक सेवाओं और मनरेगा जैसे जन हितकर उपायों पर बढ़े खर्च के बावजूद राष्ट्रीय आय के अनुपात और हमारी ज़रूरतों के बरक्स ब्राज़ील, श्रीलंका जैसे समकक्ष देशों के मुक़ाबले कम है।
- सबसे अधिक चिंतनीय है संगठित रोज़गार में वृद्धि की बात तो दूर वरन कमी और संविद तथा केजुअल मज़दूरों की संख्या में बढ़त।

ज़ाहिर है 'ग्रोथ ऑफ द नेशनल केक' राष्ट्रीय ज़रूरतों-सरोकारों को पूरा करने में असमर्थ रहने के साथ अपनी खुद की गतिमयता भी खोती-सी दिख रही है। आम आदमी की खीझ और आक्रोश तो नज़र आ ही रहे हैं, ग्रोथ रथ के शाह सवार भी अपने असंतोष को मुखरित कर रहे हैं। अपने पक्ष की नीतियों में लगातार इजाफे की कमी से नाराज हैं वे और निराशा के जाल में फंस रहे हैं। वे सामाजिक, नैतिक, पर्यावरणीय तथा प्रशासकीय क्षमता (गवर्नेंस) के मामले भी पुनर्विचार की गुहार लगा रहे हैं। पता नहीं बारहवीं योजना के जोर-शोर से उठाए गए 'समावेशी आर्थिक वृद्धि' के लक्ष्य के बारे में हमारे ग्रोथ रथ के सारथी व्यवहार में कितनी गंभीरता और निष्ठा रखते हैं।

यहां विश्व की धनी और विशालतम अर्थव्यवस्थाओं के लगातार चल रहे और नये-नये रूप ग्रहण करते संकट और उसके संक्रमण से भारत को अलग रखकर नहीं देख सकते हैं। पिछले बीस सालों में हमारे आयात-निर्यात का हमारे सारे उत्पादन में हिस्सा 14 प्रतिशत से बढ़ते-बढ़ते क़रीब 41.8 प्रतिशत यानी तीन गुणा बढ़ गया है। वैश्विक वित्तीय क्षेत्र में भारतीय रुपये की आंशिक परिवर्तनीयता लागू होने और वित्तीय उदारीकरण-वैश्वीकरण के कारण लगता है वैश्विक वित्तीय संकट के संक्रमण को हमने आमंत्रित किया है। ज़ाहिर है इन हालातों में हमारी नीतियों में राष्ट्रीय स्तर पर ज्यादा अंदरूनी मसलों की ओर बढ़ते रुझान और सक्रियता यानी राष्ट्रीय अंतर्मुखता की ज़रूरत है। साथ ही सीमित आर्थिक मसलों जैसे हर किसी भी वस्तु और सेवा के उत्पादन का समान रूप से बांहें फैलाकर स्वागत करने के बजाय उसके सामाजिक स्वरूप, प्रभाव तथा लाभ-हानि पर अर्थात उसके समावेशी चरित्र पर ध्यान केंद्रित करना होगा। आज़ादी के सातवें दशक में हमें स्वयं अपनी आशाओं, आकांक्षाओं के प्रति गंभीर सजगता दिखानी होगी। हमने शुरू में समावेशक लोकतंत्र का हवाला दिया था। लोक सक्रियता निजता से साझे सरोकारों हेतु बढ़ती सक्रियता जनता की स्व-निर्मित सत्ता समावेशिता की प्रमुख शर्त है। ❑

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री और इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली में माल्कम आदिशेषैय्या चेयर प्रोफेसर हैं।

ई-मेल : kamalnkabra@yahoo.co.in)

A Leading Institute of India for the last 2.5 Decades

DASTAK CAREER COACHING

proudly announce their **SELECTIONS 2011-12**

PCS-2009

Rank 4th	Rank 7th	Rank 16th	Rank 40th	Rank 48th	Rank 58th	Rank 66th	
Khushi Ram Roll No. 032856 Distt. Cane Officer	Ashwini Singh Roll No. 033712 Distt. Agri. Officer	Satendra Kr. Roll No. 059184 Distt. Agri. Officer	Santosh Kr. Singh Roll No. 034544 Trade Tax Officer	Vinod Kr. Singh Roll No. 046188 Distt. Agri. Officer	Devendra Niranjan Roll No. 093093 Distt. Agri. Officer	Anil Kr. Verma Roll No. 097990 Distt. Agri. Officer	Ajay Gautam Roll No. 048309 Trade Tax Officer

IAS-PCS GENERAL STUDIES | PRE & MAIN EXAMINATION

भारतीय अर्थव्यवस्था - Ravi Sinha (Sinha Sir)

भूगोल - Er. Mohd. Nasim Siddiqui (M.B.A.)

इतिहास - Mukesh Baranwal

भारतीय राज व्यवस्था - Dr. Vinay Singh

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी - Dr. Rajesh Yadav

सामयिकी व साक्षात्कार - Satish Prashant

IAS-PCS CSAT

Reasoning
PRADEEP RAI

Numerical Ability
Er. MOHD. NASIM SIDDIQUI (M.B.A.)

Language Comprehension
DILIP KUSHWAHA (English Language Expert)

SSC-Bank-RAILWAYS

Reasoning
PRADEEP RAI

Mathematics
Er. MOHD. NASIM SIDDIQUI (M.B.A.)

English
DILIP KUSHWAHA

General Studies
Ravi Sinha, Mukesh Baranwal
Er. Mohd. Nasim Siddiqui

DASTAK CAREER COACHING

13, Kamla Nehru Road, Civil Lines, Allahabad Call : 0532-2407428, 3291384, 9415252965

YH-86/2012

महिलाओं हेतु नियोजन की चुनौतियां

● निर्मला बुच

बीसवीं सदी को सदैव जेंडर क्रांति अर्थात स्त्री-पुरुष समानता के क्षेत्र में आए भारी परिवर्तन के लिए जाना जाएगा। ''नारी आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन में महिला समर्थक प्रतिबद्धता अथवा परिवर्तन के विविध आयामों पर नारीवादी दृष्टिकोण समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों और लोगों में उभरता रहा है। प्रचलित विचारधाराओं के साथ उनके अंतर्संबंधों ने पारस्परिक प्रभाव के मार्ग को प्रशस्त किया है।'' *(मजूमदार : 2012)*

भारतीय गणतंत्र में सुनियोजित विकास का सिलसिला 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना से शुरू हुआ जो अब बारहवीं योजना में पहुंच गया है। इस दौरान वार्षिक योजनाओं में समय-समय पर महिला सरोकारों और स्त्री-पुरुष समानता के सवालों पर क्रमिक सदभाव परिलक्षित होता रहा है और इन समस्याओं के निराकरण के प्रयास भी होते रहे हैं। इस प्रसंग पर ग़ौर किया जाए तो 'भारत में नारी संवेदी मुद्दों के समाधान के लिए उद्भूत विचारों का परवान चढ़ना, उनकी रणनीतियों और उनको क्रियान्वित करने के लिए बनाई गई नीतियों, कार्यक्रमों, नियोजन के ठोस उपायों का खुलासा हो सकता है।' इससे यह भी पता चलता है कि यद्यपि भारतीय नियोजन सरकार अथवा अन्य सामाजिक एजेंसियों के कार्यों के परिणामों में अदृश्य रूप से विद्यमान जेंडर आधारित भेदभाव से आगे बढ़ चुकी है, फिर भी उन्हें अभी भी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि प्रत्येक प्रयास के साथ ही नयी समस्याएं और चिंताएं जन्म लेती रहीं हैं।

प्रथम विकास दशक (1960-70) में और उसके पूर्व वैकासिक योजनाकारों की दृष्टि में महिलाएं सामाजिक सेवाओं की सुषुप्त लाभार्थी मात्र थीं। केवल भारत में ही नहीं, यह बात अन्यत्र भी लागू होती थी। उनकी सक्रिय और उत्पादक भूमिकाओं को कोई मान्यता नहीं दी गई और विकास नियोजन से उनको दूर रखा गया। देश में ग्रामीण जनसंख्या की प्रधानता को देखते हुए योजनाकारों ने विकास के जो कार्यक्रम बनाए उनमें गांवों को प्रमुखता दी गई। परंतु ग्रामीण विकास परियोजनाओं के जो लक्ष्य-समूह थे वे मुख्यत: लघु कृषक और निर्धन ग्रामीण थे। उनमें महिलाओं के लिए अलग से कोई योजना नहीं थी। महिलाओं को विकास का समान लाभ मिले, ऐसी परिकल्पना स्पष्ट नहीं थी। महिलाएं विशेषत: ग्रामीण महिलाएं उन लोगों को भी नज़र नहीं आतीं जो लोग ग्रामीण जीवन, आजीविका और अनुभवों की ओर ध्यान दे रहे थे। एक भारतीय पत्रकार जिसने अपने अनुभवों और मात्राओं के आधार पर ग्राम्य जीवन की कहानियों (समाचारों) की एक लंबी श्रृंखला प्रकाशित की थी। जिसमें केवल उन पुरुषों की चर्चा थी, जिनके पास ज़मीनें थीं और जो उन पर परिश्रम कर रहे थे तथा उनकी रोज़ी-रोटी के तौर-तरीक़ों की चर्चा की; परंतु कभी महिलाओं के बारे में कुछ नहीं लिखा। इसी से स्पष्ट है कि विकास योजनाओं और कार्यक्रमों में महिलाएं अदृश्य क्यों थी। उस पत्रकार से जब इसके बारे में पूछा गया, तो उसने साफ़ कहा कि उसे कोई (महिला) दिखाई ही नहीं दी। यह इस समस्या का एक दृष्टांत है जैसा कि नैला कबीर ने 1995 में लिखा था, ''नीतिकारों को महिलाएं दिखती ही नहीं।''

प्रथम पंचवर्षीय योजना में महिला कल्याण के मुद्दों की ओर ध्यान दिया गया और परिवार में महिलाओं की उचित भूमिका निभाने का उन्हें मौका देने और समाज में अपेक्षित भूमिका के साथ-साथ उनके कल्याण के लिए समुचित सेवाओं को बढ़ावा देने के बारे में चर्चा हुई। नियोजन के शुरुआती तीन दशकों के दौरान की प्रमुख नीतियों में महिलाओं के स्थान की अवधारणा को आकार देते समय केवल तीन कार्यक्रमों– सामुदायिक विकास कार्यक्रम, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं, तथा जन-भागीदारी

संवर्धन हेतु मूलभूत संरचनाओं के निर्माण में महिलाओं को लक्ष्य के रूप में देखा गया। तीसरी और चौथी योजनाओं में महिलाओं की शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी गई और मातृ एवं बाल स्वास्थ्य सेवाओं, बच्चों के लिए पूरक आहार और शिशुवती एवं गर्भवती महिलाओं की स्थिति में सुधार के उपाय शुरू किए गए।

बेरोज़गारी, ग़रीबी और कृषक असंतोष में वृद्धि के कारण उन्नीस सौ सत्तर के दशक में (स्त्री) असमानता में कमी लाने और न्याय दिलाने पर अधिक ज़ोर दिया गया। महिला सरोकारों के बारे में विचार करते समय नीतिकारों के ज़ेहन में केवल सामाजिक सेवाओं के प्रदाय की बात ही आती थी। संसाधनों के आवंटन में इसे कम प्राथमिकता दी जाती थी। भारत में महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति सीएसडब्ल्यूआई की 1975 में प्रकाशित रिपोर्ट के साथ ही सत्तर के दशक में ही विकास अवधारणाओं में महिलाओं को अग्रणी स्थान दिया जाने लगा। संयोगवश वर्ष 1975 में ही अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया और महिलाओं हेतु राष्ट्रीय कार्ययोजना को अंतिम रूप दिया गया। प्रारंभिक विकास योजनाओं में यह मानकर चला जाता था कि उनसे पुरुष और महिलाएं समान रूप से लाभान्वित होंगी। लगभग इसी समय ईस्टर बोसरूप की रिपोर्ट– 'आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका' सहित अन्य विद्वानों और लेखकों के लेख और अध्ययनों के प्रकाशन सामने आए, जिनमें कृषि में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को उज़ागर किया गया था। इसके बाद महिलाओं के लिए विशेष रूप से परियोजनाएं शुरू की गईं। विदेशी दानदाताओं ने इसमें विशेष सहायता कीं। ये परियोजनाएं बाद में वीमेन इन डेवलपमेंट (डब्ल्यूआईडी) परियोजनाओं के नाम से प्रसिद्ध हुईं। एक ऐसे समय में, जब महिलाओं के कार्यक्रमों के लिए संसाधन सीमित हुआ करते थे, इन कार्यक्रमों को काफी महत्वपूर्ण माना जाता था। वास्तव में, 1970 के दशक में 'विकास में महिलाएं' दृष्टिकोण, विकास की रस्मों के साथ-साथ साहित्य में भी झलकने लगा था। उन्नीस सौ सत्तर के दशक में ही जेंडर (स्त्री-पुरुष समानता) क्रांति शुरू हुई और महिलाओं की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को साभिप्राय मुखरित किया जाने लगा। अपेक्षा यह थी कि महिला सरोकारों और आवश्यकताओं की स्वीकार्यता के बाद उनको मूर्तरूप देने के लिए सरकार अपनी नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों में उनको उचित महत्व देगी। समुचित कार्यक्रम लागू किए जाने की सरकार की योग्यता, क्षमता और तत्परता में लोगों को पूरा विश्वास था।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में महिलाओं के लिए कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करते समय काफी उत्तेजना और सजगता देखी गई। इससे पूर्व ऐसी घटनाओं के प्रमाण सामने आए थे कि विकास के लाभ उठाने में महिलाओं को समान अवसर और स्तर नहीं मिल रहे हैं। परंतु यह भी देखा गया कि विकास नीतियों और योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में जो तटस्थ संस्थाएं शामिल थीं, उनमें महिलाओं की भागीदारी पुरुषों के बराबर नहीं हुआ करती थी। इसलिए, महिलाओं के संगठन और योजनाओं के निर्माण में रुचि लेने वाले महिला नेटवर्क का उदय हुआ। इन लोगों ने विकास-नियोजन में महिलाओं के मुद्दों को उठाने में प्रमुख भूमिका निभाई। इसमें जो अंतर्निहित संघर्ष था, वह इसलिए कि महिलाओं को न केवल विकास कार्यक्रमों के लाभार्थी के रूप में देखा जाना चाहिए, बल्कि उनको प्रशासन और विकास कार्यक्रमों के निर्माण में भी उचित भूमिका मिलनी चाहिए। महिलाओं को परिवर्तन के एजेंट के रूप में एवं उत्पादक और श्रमिक के रूप में भी देखना चाहिए।

विकास कार्यक्रमों और उनमें महिलाओं की भूमिका की अदृश्यता को एक पृथक लक्ष्य समूह के रूप में विचार करने पर ज़ोर दिया जाने लगा। महिलाओं के उस कामकाज का मूल्यांकन किया जाने लगा, जिनके लिए कोई भुगतान नहीं किया जाता था। उनके कौशल विकास के साथ-साथ उनके बुनियादी संगठनों को बढ़ावा देने का सिलसिला भी शुरू होने लगा।

1960-70 के दशक में महिला आंदोलनों और जनसंख्या वृद्धि को सीमित करने के वैश्विक अभियान को एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखा जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि इससे महिलाओं की रोज़गार एवं आय की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जा सकेगा और इसका प्रजनन प्रवृत्तियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

छठी योजना (1980-85) में पहली बार पृथक से एक अध्याय 'महिलाएं और विकास' पर केंद्रित था। इसमें परिवार को विकास की एक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया और बुनियादी दृष्टिकोण के आधार पर महिलाओं के लिए रणनीति तैयार की गई। इसी के तहत महिलाओं, बच्चों की शिक्षा और परिवार नियोजन पर विशेष ज़ोर दिया गया। परिवार की निर्धनता के प्रशमन में इन तीनों पहलुओं की सफलता को आवश्यक समझा गया।

अस्सी के दशक में नियोजन और विकास प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के बारे में चेतना बढ़ने लगी। ग्रामीण महिलाओं के कार्य की अदृश्यता तथा श्रम बल की भागीदारी में आंकड़ों में मुफ़्त में काम करने वाली घरेलू औरतों के योगदान की उपेक्षा पर गंभीर विमर्श का दौर शुरू हो गया था। भोजन तैयार करने और अन्य सेवाओं को अंजाम देने में लगी महिलाओं के कार्य 'लाभप्रद रोज़गार' नहीं माना जाता था। महिलाओं को स्वतंत्र आर्थिक इकाई के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था और इसीलिए उनके कार्य का सही मूल्यांकन नहीं होता था और उन्हें पारिश्रमिक भी पुरुषों की अपेक्षा कम मिलता था।

देश में निर्धनता प्रशमन कार्यक्रमों के लिए जो कार्यक्रम शुरू किए गए उनमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार परियोजना (एनआरईपी), काम के बदले अनाज, जवाहर रोज़गार योजना (जेआरवाई), आरएलईजीपी और ईएएस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अब महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना (मनरेगा) शुरू की गई है, जिसमें महिलाओं को वर्ष में रोज़गार देने के लिए न्यूनतम दिवस तय कर दिए गए हैं। इस कार्यक्रम की निगरानी भी होती है। न्यूनतम वेतन पर वर्ष में 100 दिनों का रोज़गार देने की गारंटी का

प्रावधान इस अधिनियम में भी किया गया है। परंतु यह गारंटी परिवार के लिए है, व्यक्तिगत महिलाओं के लिए नहीं। इसी प्रकार, ग्रामीण निर्धन को स्वरोज़गार कार्यक्रम में परिवार की निर्धनता को मापदंड माना जाता है– महिला अथवा पुरुष की व्यक्तिगत निर्धनता को नहीं। योजनाकारों के समक्ष लक्षित महिलाओं तक पहुंचने की चुनौती रहती है। उन तक केवल परिवार के माध्यम से पहुंचा जा सकता है। परिवार के माध्यम से महिलाओं तक पहुंचने के दुराग्रह के कारण परिवार के भीतर जो कुछ उथल-पुथल मचा होता है और उसके जो परिणाम होते हैं उसे हम नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

महिलाओं हेतु नियोजन के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट और चुनौती, पुरुष-प्रधान समाज से आती है। उनके विरोध और प्रवृत्तियों से निपटना एक टेढ़ी खीर है। उनका यह विरोधात्मक रवैया महिला-केंद्रित कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धनराशि का आवंटन न मिलने का प्रमुख कारण है। महिला केंद्रित कार्यक्रमों को अन्य लक्षित सामाजिक समूहों के लिए बने कार्यक्रमों के समान महत्व नहीं मिलता। महिलाओं के कार्यक्रमों को चाहे जितना सोच-विचार कर बनाया जाए, उसे केवल कुछ चुने हुए विकास-खंडों और ज़िलों में ही आज़माया जाता है। व्यापक और सार्वभौमिक कार्यक्रम का रूप उसे चुनिंदा ज़िलों में सफ़लता के बाद ही मिलता है और कई बार तो इससे पहले ही उसका सारा जोश ठंडा पड़ जाता है। किशोरियों को पौष्टिक आहार प्रदान करने वाले कार्यक्रम– डीडब्ल्यूसीआरए और सबला कार्यक्रम इसी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। इसी का परिणाम है कि जब एक अध्ययन में महिला-केंद्रित कार्यक्रमों की जानकारी के बारे में पता लगाने का प्रयास किया गया, तो कोई उत्साहजनक बात हाथ नहीं लगी। पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित तो कर दी गई हैं, परंतु वे उन महिलाओं के सगे-संबंधियों की 'प्राक्सी' सीटें मानी जाती हैं और यह धारणा अभी भी वैसी ही बनी हुई है। सरकारी अधिकारियों को महिलाओं के पुरुष संबंधियों के साथ व्यवहार करने में सुविधा होती है। हालांकि बहुत-सी महिलाएं अभी सक्रियता दिखा रही हैं। राजस्थान के सोडा गांव की सरपंच छवी राजावत इसका अनुपम उदाहरण है।

विधिक सुधार एक और ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सरकार ने अनेक नये कानून बनाए हैं और पूर्ववर्ती कानूनों में संशोधन किए हैं। बाल विवाह पर रोक लगाने वाले कानून को पांच वर्ष पहले और अधिक प्रभावशाली बना दिया गया है। भ्रूण हत्या और शिशु हत्या को रोकने के लिए गर्भस्थ शिशु के लिंग परीक्षण पर कानूनन रोक लगा दी गई है। परंतु इस कानून के क्रियान्वयन पर अभी भी सवाल उठ रहे हैं। इसी प्रकार, घरेलू हिंसा निवारक कानून और महिलाओं की सुरक्षा पर इसके प्रभाव को देखें तो अधिकारियों/कर्मचारियों की नियुक्तियों और उनकी संख्या के बारे में भी सवाल खड़े हो सकते हैं। महिला-समर्थक इन दो कानूनों के क्रियान्वयन में जो असमानता और असंतुलन दिखाई देता है, उससे स्पष्ट है कि उनके प्रति उदासीनता बरती जा रही है। उन्हें अपेक्षित संस्थागत ढांचा ही उपलब्ध नहीं कराया गया है। इससे महिला हितैषी कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार में परिवर्तन लाने के प्रयासों में पुरुष-प्रधान समाज का प्रतिरोध परिलक्षित होता है।

योजनागत कार्यक्रमों और संसाधनों के आवंटन और परिचालन में समय-समय पर ऐसे प्रावधान किए जाते रहे हैं जिनमें महिलाओं के लिए अलग से राशि आवंटित होती रही है ताकि न केवल महिला-केंद्रित कार्यक्रमों बल्कि सभी कार्यक्रमों में महिलाओं के हितों का ध्यान रखा जाए। मंत्रालयों और विभागों में महिला प्रकोष्ठों और विशेष केंद्रों की स्थापना की गई, परंतु लगता था कि उनको पर्याप्त अधिकार और संसाधन नहीं दिए गए थे।

अतः अब तक जो प्रयास हुए हैं उनके अनुभवों को देखते हुए, भारत में महिलाओं के लिए नियोजन की क्या चुनौतियां हो सकती है? क्या हमारे योजनाकार 'परिवार' के दृष्टिकोण से हटकर 'परिवार में महिला' दृष्टिकोण को अपना सकेगें ताकि सार्वजनिक निधि से परिचालित कार्यक्रमों में उन्हें समान लाभ पहुंचाना सुनिश्चित किया जा सके। पुरुष प्रधान समाज की उदासीनता और प्रतिरोध से निपटने के लिए क्या रणनीति हो सकती है, ताकि स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत को यथार्थ रूप दिया जा सके? महिलाओं के सशक्तीकरण, महिला हितैषी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन और कानूनों के अमल में नारी संवेदी दृष्टिकोण के अभाव के लिए क्या सरकार स्वयं ही पुरुष प्रधान सोच की पैरोकार के रूप में काम कर रही है? हमें इस पर आत्ममंथन करना होगा। महिलाओं ने प्रत्येक चुनौती में स्वयं को पुरुषों के समान पेश किया है। उन्हें जब शिक्षा के अवसर मिले तो उन्होंने पुरुष प्रत्याशियों से बेहरत प्रदर्शन किया। परिवार और राष्ट्र के प्रति उनका योगदान अमूल्य है। यह स्थिति तब है जब वे घर और बाहर बहुल भूमिकाएं और उत्तरदायित्व निभा रही हैं। उनके लिए जो योजना बने वह वैसी नहीं होनी चाहिए, जो कमज़ोर वर्गों के लिए बनाई जाती हैं। उन्हें समाज के समान नागरिक के तौर पर देखा जाना चाहिए और तदनुसार योजनाएं बनाई जानी चाहिए। महिलाओं के व्यक्तिगत अस्तित्व के रूप में उनके पास कार्यक्रम पहुंचने चाहिए न कि परिवार के सदस्य के नाते। यदि आज महिला सशक्तीकरण की चर्चा हो रही है तो उसे साकार करने के लिए योजनाएं बनाकर उन पर अमल किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी क्षमता का विकास कर सकें। उन्हें निष्क्रिय लाभार्थी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। वे महिलाएं जो प्रत्येक चुनाव में ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में प्रवेश कर रही हैं, वे एक सशक्त संसाधन हैं। संसाधनों और अधिकारों के अपर्याप्त विकेंद्रीकरण और पुरुष प्रधान समाज के मुक्त खेल से महिलाओं के कार्य में कोई बाधा नहीं खड़ी करनी चाहिए। ❑

(लेखिका भारत सरकार के ग्रमीण विकास मंत्रालय की सचिव रह चुकी हैं और संप्रति भोपाल स्थित *महिला चेतना मंच* **नामक स्वैच्छिक संगठन चलाती हैं।**

ई-मेल : nirmala-buch@gmail.com)

Alternative Learning Systems

India's No. 1 IAS Training Institution

ALS

Training Steel Pillars For The Nation

सामान्य अध्ययन

मुख्य-सह-प्रारंभिक परीक्षा 2013-14 + CSAT

Top Results from ALS House

ALS General Studies & Pol Sc student

Rukmani Riar 2nd RANK (2012)

हिन्दी माध्यम में सर्वोच्च परिणाम

9 RANK

Jai Prakash Maurya

वर्ष 2010 में सर्वोच्च स्थान

15 RANK

Manoj Jain

वर्ष 2006 में सर्वोच्च स्थान

सामान्य अध्ययन

(नियमित कक्षा के छात्र)

213+ final selection in Civil Services '11

हिन्दी माध्यम GS की सर्वश्रेष्ठ टीम

- भारतीय राजव्यवस्था — द्वारा *मनीष गौतम* एवं *मनोज कुमार सिंह*
- मैजिक मोमेंट्स एवं निबंध — द्वारा *शशांक एटम*
- इतिहास एवं संस्कृति — द्वारा *वाई डी मिश्रा* एवं *मनोज कुमार सिंह*
- राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, भारत एवं विश्व (समसामयिक मुद्दे) — द्वारा *मनीष गौतम, डॉ. रमेश सिंह* एवं *सी.के. सिंह*
- भारतीय अर्थव्यवस्था — द्वारा *अरूणेश सिंह*
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी — द्वारा *मनीष गौतम, अरविंद सिंह* एवं *डॉ. संजय पांडे*
- सांख्यिकी — द्वारा *अरविंद सिंह*
- भूगोल — द्वारा *शशांक एटम* एवं *डॉ. शशि शेखर*
- सामान्य विज्ञान — द्वारा *डॉ. शशि शेखर* एंव *डॉ. संजय पाण्डे*
- सामाजिक मुद्दे — द्वारा *धर्मेंद्र, डॉ. रमेश सिंह* एवं *वाई.डी. मिश्रा।*

CSAT की सर्वश्रेष्ठ टीम Arvind Singh, David William, Sachin Arora, DM Kumar & other famous experts

कार्यक्रम निदेशक **मनोज कुमार सिंह**

सर्वश्रेष्ठ कक्षागत योजना

• **सामान्य अध्ययन** (प्रारंभिक-सह-मुख्य परीक्षा) हेतु 500+ घंटे का कक्षा प्रशिक्षण • **CSAT** हेतु 150+ घंटे का क्लासरूम प्रशिक्षण • कक्षा के प्रारंभ में आधार निर्माण हेतु परीक्षा संबंधी रणनीति एवं Basic से कक्षा प्रारंभ • सामान्य ज्ञान अभिवर्धन पर विशेष बल • कक्षा प्रारंभ के पूर्व ही पाठ्य सामग्री का वितरण • कंप्यूटर/ प्रोजेक्टर पर आधारित प्रशिक्षण व्यवस्था • निबंध हेतु विशेष कक्षाएं • सामान्य अंग्रेजी की विशेष कक्षाएं • मॉड्यूल आधारित क्लॉस टेस्ट एवं गृह कार्य • मुख्य परीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर लेखन का अभ्यास (शब्द 250, 150, 100, 75, 25 New pattern) • यूपीएससी समकक्ष मूल्यांकन, व्यक्तिगत फीडबैक एवं मॉडल उत्तर की प्रस्तुति

समसामयिकी विशेष पर आधारित कक्षाएं

• प्रमुख अंग्रेजी एवं हिन्दी समाचार पत्रों के आधार पर समसामयिक सामग्रियों का निर्माण एवं कक्षा में वितरण • समसामयिक कक्षाएं (Fortnightly Current Affair Round up)

R&D Support: *Wizard* समसामयिकी

3 दिवसीय कार्यशाला निःशुल्क

21, 22, 23 जुलाई

Time: **6** pm

द्वारा **ALS Team**

आप सादर आमंत्रित हैं।

बैच प्रारंभ

Morning Batch	Batch II: 11:30am-02:00pm **10** जुलाई एवं **25** जुलाई
Evening Batch	Batch III: 06:30pm-09:00pm **7** अगस्त एवं **28** अगस्त
Morning Batch	Batch IV: 07:45am-10:45am **28** अगस्त एवं **25** सितम्बर

समसामयिकी क्रैश कोर्स बैच प्रारंभ प्रारंभिक परीक्षा परिणाम के सात दिन बाद

भूगोल मुख्य परीक्षा 2012-13 | **इतिहास** मुख्य परीक्षा 2012-13 | **लोक प्रशासन** मुख्य परीक्षा 2012-13 | **दर्शनशास्त्र** मुख्य परीक्षा 2012-13 | **समाजशास्त्र** मुख्य परीक्षा 2012-13 | **पालि** मुख्य परीक्षा 2012-13

Programme Director : **Manoj Kumar Singh**

Managing Director: ALS, Interactions IAS Study Circle, Competition Wizard, ISGS

ALS ADMISSION ENQUIRY

9999343999, 9871851313
9999975666, 9810312454
9810269612

Visit us at: www.iasals.com

ALS Alternative Learning Systems

IAS Study Circle interactions Shaping dreams into success

Be in touch... **Manoj K Singh** *Managing Director,* ALS manojkumarsingh@alsias.net

Alternative Learning Systems (P) Ltd.

Corporate Office: ALS, B-19, ALS House, Commercial Complex, Dr Mukherjee Nagar, Delhi-09. Ph: 27651110, 27651700. *South Delhi Centre:* 62/4, Ber Sarai, Delhi-16

YH-91/2012

स्वतंत्रता के 65 वर्ष

● आर.सी. राजामणि

किसी देश के इतिहास में 65 वर्ष की अवधि एक छोटा कार्यकाल माना जाता है।

भारत ने आज़ादी के 65 वर्ष पूरे कर लिए हैं लेकिन इसे एक युवा राष्ट्र ही कहा जाएगा। यह वह देश है जिसने सभ्यता की कई सहस्राब्दियां देखी हैं और पिछले साढ़े छह दशकों के दौरान तरह-तरह की चुनौतियों के बावजूद एक लोकतंत्रीय देश बना रहा है। यही नहीं इस राष्ट्र ने बहुत कम समय में अनेक क्षेत्रों में बहुत प्रगति की है और राष्ट्रों के समुदाय में एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा है। अब तो इसे एशिया का महाशक्ति कहा जाने लगा है।

भारत ने लोकतंत्र का पहला पड़ाव 1952 में तब पूरा किया जब यहां पर पहली बार आम चुनाव हुए। इसके बाद 14 और आम चुनाव कराए जा चुके हैं और सत्ता एक पार्टी से दूसरी पार्टी के हाथ में आती-जाती रही है। गठबंधन सरकारें अच्छे ढंग से चलीं हैं और शांति बनी रही। ऐसा कोई वक़्त नहीं आया जब सत्ताविहीन समय महसूस किया गया हो। इसे भारत में लोकतंत्र की जीत ही माना जाएगा। खासतौर से तब जब दक्षिण एशिया के अन्य देशों में अस्थिरता बनी रही और जिसके कारण चुनी हुई सरकारें सत्ता से बाहर कर दीं गईं तथा सैनिक तानाशाहों ने अपने पैर फैलाएं।

इस युवा राष्ट्र ने अपने 21 वर्ष से ऊपर के सभी युवाओं को मतदान का अधिकार दिया और लिंग, जाति, धर्म या समुदाय के आधार पर किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया। कुछ वर्षों बाद उन लोगों को भी मतदान का अधिकार दे दिया गया जो 18 या इससे अधिक आयु के हैं। पहले ही आम चुनाव में महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया गया जिससे भारतीय लोकतंत्र ने ब्रिटेन और अमरीका जैसे अन्य आधुनिक लोकतंत्रीय देशों के मुक़ाबले बेहतर काम कर दिखाया। हमारा देश 1950 में तब पूरी तरह से एक लोकतंत्रीय देश बन गया जब इसका अपना एक संविधान बना।

1947 में ब्रिटेन से स्वाधीनता पाने के बाद पहला आम चुनाव 1952 में हुआ जो एक तरह से भारत की क्षमता की परीक्षा थी जिससे यह सिद्ध होना था कि एक लोकतंत्र के रूप में भारत बरक़रार रहेगा या नहीं।

1952 में देश के साढ़े 17 करोड़ से ज्यादा लोग मतदाता थे। भले ही उनमें से सिर्फ़ 15 प्रतिशत साक्षर थे। 2009 के पिछले आम चुनाव में मतदाताओं की संख्या बहुत बढ़ गई। देश में 1,055 राजनीतिक दल हैं जिनमें से 7 राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक पार्टियां हैं और अनेक क्षेत्रीय दल। राज्य स्तर की पार्टियों एवं मतदाताओं की संख्या बढ़कर 71 करोड़ 40 लाख तक पहुंच गई है। 13 मई, 1952 भारतीय लोकतंत्र के लिए वो स्वर्णिम दिन था जब भारत की पहली संसद के सत्र का पहला दिन शुरू हुआ। लोकसभा और राज्यसभा के अधिवेशन उसी दिन सबेरे 11 बजे शुरू हुए। लोकसभा में श्री जी. वी. मावलंकर को अंतरिम अध्यक्ष घोषित किया गया। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने सभी नवनिर्वाचित सांसदों को शपथ ग्रहण करने को कहा। ये प्रक्रिया शुरू होने से पहले मावलंकर ने इस दावे से इंकार किया कि जहां तक संभव होगा सभी नाम सही-सही पुकारे जाएंगे। फिर भी अगर कोई ग़लती हो तो मैं सभी माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे क्षमा करें। यह भारत के उस रूप का प्रतिबिंब था जिसमें विविधता, बहु-जातीयता, बहुभाषा और बहुधर्मी समाज की झलक मिलती है।

लोकसभा ऐसा सदन है जिसमें विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं सुनाई पड़ती हैं और दृष्टिकोण देखे जा सकते हैं। प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक प्रस्ताव पेश कर गणेश मावलंकर का नाम अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया। सत्यनारायण सिन्हा ने दूसरे नंबर पर इसका समर्थन किया। इसके तुरंत बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के ए. के. गोपालन ने शंकर शांताराम मोरे का नाम प्रस्तावित किया। गोपालन, कन्नानोर से संसद सदस्य थे और उन्होंने जवाबी प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। बरहमपुर के टी.के. चौधरी ने शंकर शांताराम के नाम का दूसरे नंबर पर समर्थन किया।

मद्रास से आए डॉ. लंका सुंदरम, निर्दलीय ने इन दोनों प्रस्तावों के बीच संधि स्थापित करने की कोशिश करने के लिए दोनों दलों से विपक्षी दल के उम्मीदवार को उपाध्यक्ष बनाने का सुझाव दिया। इसके बदले में विपक्षी सदस्यों को श्री मावलंकर को अध्यक्ष पद के लिए चुनना था। लेकिन फिर भी कुछ सदस्यों ने उनका विरोध किया।

श्री मावलंकर को ध्वनिमत से अध्यक्ष घोषित कर दिया गया। पराजित उम्मीदवार ने खड़े होकर खेद प्रकट किया। मावलंकर को बधाई देने के बाद उन्होंने सदन को याद दिलाया कि ऐसी हालत में ब्रिटेन की हाउस ऑफ कामंस में किस तरह के आचरण की परिपाटी है। ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामंस से ही भारत ने अनेक लोकतंत्रीय परिपाटियां अपनाई हैं। उन्होंने कहा कि ये दुर्भाग्य की बात है कि इस सदन की पहली बैठक के दिन ही ऐसी कई परिपाटियों की अनदेखी की जा रही है। उन्होंने अग्रेज़ों की एक परिपाटी का उदाहरण देते हुए कहा कि एक अल्पसंख्यक सदस्य द्वारा अध्यक्ष के नाम का दूसरे नंबर समर्थन होना चाहिए ताकि अध्यक्ष को इस बात का एहसास हो सके कि उन्हें निष्पक्ष भाव से अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखना है। उन्होंने कहा कि सदन के नेता जब अध्यक्ष का नाम प्रस्तावित कर रहे हों उसी समय अगर कोई अन्य महत्वपूर्ण नेता दूसरे नंबर पर उसका समर्थन करता है तो इससे अध्यक्ष की निष्पक्ष गरिमा पर आंच आ सकती है।

जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा कि जिस तरह से अध्यक्ष का चुनाव किया गया है उससे मैं बहुत खुश नहीं हूं क्योंकि ऐसा करते हुए अध्यक्ष के चुनाव की निष्पक्षता पर आंच आई है। अध्यक्ष को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये सही है कि सत्तापक्ष के सदस्यों की संख्या ज्यादा है और सत्तारूढ़ पार्टी बहुमत में है फिर भी स्वतंत्र भारत में यह पहला मौका है जब हम एक संसदीय प्रणाली अपना रहे हैं जहां पर विपक्षी दल भी कोई कम नहीं है। अब आप लोगों को ये देखना है कि परिपाटियां और प्रथाएं किस तरह से बरक़रार रखी जाएं, उनका सम्मान हो ताकि संवैधानिक व्यवस्था विकसित हो और ये सदन उसका विकास स्थल बने।

अध्यक्ष को बधाई देने के बाद तत्कालीन संसद सदस्य सुचेता कृपलानी ने उनसे अनुरोध किया कि वे सिर्फ़ कांग्रेस के ही नहीं बल्कि सभी राजनीतिक दलों के हितों की सुरक्षा करें। उन्होंने कहा कि इस सदन में सिर्फ़ कांग्रेस पार्टी के ही सदस्य नहीं बल्कि अन्य राजनीतिक पार्टियों के सदस्य भी मौजूद हैं। अनेक सदस्य निर्दलीय हैं और वे इस सदन में जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। हो सकता है कि इनमें कुछ राजनीतिक दलों की सदस्य संख्या कम हो लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि सत्तारूढ़ दल के ही नहीं बल्कि सभी दलों के सदस्यों के अधिकार सुरक्षित रहेंगे। कांग्रेस द्वारा अपना एजेंडा चलाने पर अनेक सदस्यों ने चिंता प्रकट की और कहा कि इससे छोटे दलों और अल्पसंख्यक हितों की उपेक्षा हो सकती है।

ये ऐसा मौका था जब स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीक़े से विचार प्रकट किए गए और लोकतंत्र सर्वश्रेष्ठ ढंग से काम कर रहा था। इस प्रकार की कार्यशैली भारतीय संसद के पहले दिन ही अपनाई गई। सौभाग्य की बात है कि वही कार्यप्रणाली आज भी ज़ारी है।

शुरू-शुरू में सदन में महिलाओं की संख्या बहुत कम थी। उस समय दोनों सदनों में महिलाओं की कुल संख्या लगभग 20 रही होगी। लोकसभा में महिला सदस्यों की संख्या 10 से कम थी। उनमें से कुछ प्रमुख नाम थे- राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी, उमा नेहरू, अम्मू स्वानीनाथन तथा जी.दुर्गाबाई। मद्रास से सबसे ज्यादा, चार महिलाएं निर्वाचित हुई थीं।

अब आइए! पहली लोकसभा के कुछ सदस्यों के जीवनवृत्त पर नज़र डालें। पहली लोकसभा में चुने गए अधिकांश सदस्य स्नातक थे। उनमें से भी काफी ज्यादा यानी तक़रीबन 75 विधि में स्नातक थें और अधिकांशत: कानून में स्नातकोत्तर थे। कम से कम 35 सदस्य कला अथवा विज्ञान में मास्टर्स की डिग्रीधारक थें। इनमें से 15 से ज्यादा लोगों ने विदेश में शिक्षा ग्रहण की थीं, जिनमें से कुछ के नाम हैं- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमरीका और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स), पंडित जवाहरलाल नेहरू (हैरो स्कूल, ट्रिनिटी कॉलेज, कैंब्रिज), मेजर जनरल हिम्मत सिंहजी (मेलबर्न कॉलेज, ऑक्सफोर्ड), सरदार बल्लभभाई पटेल (मिडिल टेंपल, इंग्लैंड), हृदय नाथ कुंजरू (लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स), एच.जी. मुद्गल (न्यूयार्क कॉलेज)।

आज बड़े गर्व से कहा जाता है कि देश में मैट्रिक से नीचे तक शिक्षित सांसद की संख्या कम और स्नातकोत्तर की ज्यादा है। देश में हायर सेकेंडरी से कम शिक्षित सांसदों की संख्या कम हो गई है। 1952 में जहां ऐसे सांसदों की संख्या 23 प्रतिशत थीं, वहीं 2009 में ऐसे लोगों की संख्या घटकर 3 प्रतिशत रह गईं। इस तरह से स्नातकों की संख्या भी बढ़ गई। 1952 में जहां 58 प्रतिशत सांसद स्नातक थें वहीं वर्ष 2009 में 75 प्रतिशत सांसद स्नातक हैं। 1952 में स्नातकोत्तर सांसदों की संख्या ज्यादा थीं। तब 18 प्रतिशत स्नातकोत्तर सांसद थे अब यह संख्या बढ़कर 29 प्रतिशत हो गई है।

जहां तक आयु का संबंध है, कुछ ही सांसद ऐसे हैं जो 40 वर्ष के कम आयु वर्ग के हैं। अधिक आयु वाले सांसदों की संख्या का प्रतिशत बढ़ गया है। 1952 में जहां सिर्फ़ 20 प्रतिशत सांसद 56 वर्ष या इससे ज्यादा के थे वहीं 2009 में यह संख्या 43 प्रतिशत है।

पहली लोकसभा में 70 वर्ष से अधिक आयु वाले एक भी सांसद नहीं थे। वर्तमान लोकसभा में यह संख्या 7 से अधिक है। 40 वर्ष से कम आयु वाले सांसदों की संख्या घट गई है। 1952 में जहां यह 26 थीं वहीं वर्तमान लोकसभा में ऐसे सांसदों की संख्या 14 है।

महिला सांसद, पुरुष सांसदों की अपेक्षा अधिक युवा हैं। 15वीं लोकसभा के शुरू में महिला सांसदों की औसत आयु 47 वर्ष थी जबकि पुरुष सांसदों की औसत आयु 54 वर्ष थी। एक भी महिला सांसद 70 वर्ष से ज्यादा की नहीं हैं।

वर्तमान 15वीं लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या ज्यादा है। 15वीं लोकसभा में 11 प्रतिशत सांसद महिलाएं हैं। इसकी तुलना में पहली लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या सिर्फ़ 5 प्रतिशत थी। हमारी संसद में महिला सांसदों का प्रतिशत भले ही बढ़ गया हो लेकिन अन्य देशों की तुलना में यह कम है। अगर तुलना करें तो देखेंगे कि स्वीडन में 45 प्रतिशत महिला सांसद हैं, अर्जेंटीना में 37 प्रतिशत, ब्रिटेन में 22 प्रतिशत और अमरीका में 17 प्रतिशत सांसद महिलाएं हैं।

राज्यसभा ने मार्च 2010 में महिला आरक्षण विधेयक पास किया था जो इस समय लोकसभा में लंबित है। इस विधेयक में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं की एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रस्ताव है।

1950 में लोकसभा की सालभर में 127 दिन बैठक हुई थी। राज्यसभा की बैठक 93 दिन हो सकी थी। वर्ष 2011 में ये संख्या

घटकर दोनों सदनों के लिए 73 दिन हो गई है।

1993 में विभागीय स्थाई समितियों का गठन किया गया था। तब से संसद अनेक विधेयक और मुद्दे इन समितियों को भेजती रही हैं ताकि उनका विस्तृत विश्लेषण किया जा सके। ये कार्य संसद की निर्धारित बैठकों से बाहर किया जाता है।

पिछले कुछ दशकों में संसद द्वारा पारित किए गए विधेयकों की संख्या घट गई है। पहली लोकसभा में जहां हर साल 72 विधेयक पास होते थे वहीं 15वीं लोकसभा द्वारा पारित किए गए विधयेकों की औसत संख्या 40 रह गई है।

1976 में संसद ने 118 विधेयक पास किए थे। उस समय आपातकाल चल रहा था जोकि देश के लोकतंत्र का एकमात्र दुखद वर्ष है। उस समय एक ही वर्ष में सबसे ज्यादा विधेयक पारित किए गए। संसद द्वारा पारित किए गए सबसे कम 18 विधेयक 2004 में पारित किए गए थे।

उक्त विवरणों से सिद्ध होता है कि भारत में लोकतंत्र ठीक-ठाक काम कर रहा है भले ही उसमें कुछ कमियां दिखाई देती हों। कुछ ऐसे लोकतंत्रीय कर्तव्य हैं जो हर नागरिक से जुड़े हुए हैं। इन कर्तव्यों और संबद्ध नागरिकों को अपना नागरिक धर्म निभाने की ज़रूरत है।

किसी भी लोकतंत्र का जीवन गोपनीय मतदान में निहित होता है। कहावत है कि लोकतंत्र की क़ीमत निरंतर सतर्कता के रूप में चुकानी पड़ती है। इसमें कोई शक नहीं है कि मतदाताओं को सदैव सतर्क रहना चाहिए और उन्हें चुनाव में अपना मतदान ज़रूर करना चाहिए।

मतदान के महत्व को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन आयोग की तरफ से हर साल 25 जनवरी को राष्ट्रीय मतदाता दिवस मनाया जाता है। इसी दिन भारत के राष्ट्रीय निर्वाचन आयोग की स्थापना हुई थी। इसके पीछे मंशा यह है कि युवा मतदाताओं को मतदान में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जाए।

अगर मतदान का प्रतिशत अधिक होता है तो इससे मतदाताओं की लोकतंत्रीय पसंद स्पष्ट होती है। ये दुर्भाग्य की बात है कि अनेक कारणों से भारत के राष्ट्रीय स्तर के चुनावों में मतदान औसतन 60 से 65 के बीच रहा है। आदर्श रूप से अगर ज्यादा नहीं तो यह प्रतिशत 76 से 80 प्रतिशत के बीच होना चाहिए।

लेकिन हैरत की बात है कि भारत में सुशिक्षित और अमीर लोग इस मामले में पिछड़े हुए हैं। अधिकांश जो मतदाता मतदान केंद्रों में पहुंचते हैं वे ग़रीब और वंचित वर्गों के होते हैं और उन्हीं में ज्यादा उत्साह दिखाई देता है। अगर कोई भी व्यक्ति पर्याप्त कारण के बिना मतदान नहीं करता है तो यह लोकतंत्र के प्रति हमारी सेवा भावना के विपरीत है और इससे हमारे उन स्वतंत्रता सेनानियों की भावना को ठेस पहुंचती है जिन्होंने देश को आज़ादी दिलाने के लिए कुर्बानी दी।

इस वर्ष देश में 1 जनवरी तक लगभग 4 करोड़ नये मतदाता पंजीकृत किए गए हैं जिनमें से 1 करोड़ 11 लाख 18-19 आयु वर्ग के हैं। पिछले साल जो युवा मतदाता पंजीकृत किए गए थे उसके मुक़ाबले ये संख्या दोगुनी है।

युवा वर्ग को किसी भी देश का भविष्य माना जाता है अगर वही लोकतंत्रीय प्रक्रिया में कम उत्साह दिखाता है तो यह हमारा दुर्भाग्य है। स्थिति यह है कि 18-19 वर्ष के 15-20 प्रतिशत मतदाता ही साल के दौरान अपने नाम मतदाता सूची में दर्ज़ कराते हैं। देखा गया है कि 25 साल से कम आयु वाले मतदाता मतदान में बहुत कम भाग लेते हैं। यह प्रक्रिया बदलनी चाहिए।

अब आगे एक नज़र डालते हैं प्रगति और विकास के क्षेत्रों में लोकतंत्र ने किस तरह काम किया है पर।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की जनसंख्या 40 करोड़ से कम थी उस समय देश की ज़रूरतें पूरी करने के लिए अनाज आयात किया जाता था। देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 1947 में कहा था कि हर चीज़ इंतज़ार कर सकती है लेकिन खेती नहीं। हमारे वैज्ञानिकों ने ज़रूरत के मुताबिक काम करते हुए 1960 में हरित क्रांति का सूत्रपात किया। अनाज की पैदावार दोगुनी हो गई। प्रतिहेक्टेयर ज़मीन पर ज्यादा उपज देने वाले बीज तथा उर्वरकों की मदद से अधिक पैदावार होने लगी। भारत आज अनाज के मामले में आत्मनिर्भर ही नहीं है बल्कि अनाज निर्यातक भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए पश्चिमी देशों पर निर्भर था। आज वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उन्नत देशों में गिना जा रहा है और उसे दुनिया का तीसरे नंबर का ऐसा देश माना जाता है जहां के लोग तकनीकी रूप से सक्षम हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि भारत एक परमाणु शक्तिसंपन्न देश है, लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने इस शक्ति का उपयोग करने में बहुत ईमानदारी दिखाई है। भारत ने मिसाइल टेक्नोलॉजी में जबर्दस्त प्रगति की है और पृथ्वी, अग्नि और आकाश जैसी मिसाइलें विकसित की हैं। अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी में भी भारत की प्रगति सराहनीय है। यही नहीं भारत अंतरिक्ष के मामले में एक व्यापारिक देश बन चुका है।

15 अगस्त, 1947 को देश में लोगों की संभावित औसत आयु 28 वर्ष थी जो अब लगभग दोगुनी हो चुकी है। इसी तरह से साक्षरता दर 14 प्रतिशत थी जो लगभग चार गुना हो चुकी है। भारत का सकल घरेलू उत्पाद लगभग 6 गुना बढ़ चुका है। देश में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या पहले के मुक़ाबले अब आधी रह गई है।

लेकिन अब भी चुनौतियां बनी हुई हैं। अभी भारत को ग़रीबी उन्मूलन की दिशा में काम करना है। शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करना अभी संभव नहीं हुआ है। भारत में चलाए जा रहे स्वास्थ्य कार्यक्रम और अन्य योजनाओं का लाभ सभी लोगों तक नहीं पहुंच पा रहा है। इस संदर्भ में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का शब्द दोहराना उचित होगा जो उन्होंने पिछले स्वाधीनता दिवस के अवसर पर राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा था। उन्होंने कहा था कि ''ये देखना महत्वपूर्ण होगा कि भारत लिंग, जाति अथवा धर्म के आधार पर बंटने न पाए क्योंकि यहां पर बड़ी संख्या में कमज़ोर और वंचित वर्गों के लोग रहते हैं। जिसमें से अनेक लोग निशक्त हैं और जिन्हें सहायता की ज़रूरत है। भारत में कोई क्षेत्र अथवा व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे देश के विकास और प्रगति का लाभ न मिला हो। हमें एक ऐसे देश का निर्माण करना है जहां उसका हर नागरिक गरिमापूर्ण ढंग से आत्मसम्मान के साथ जीवनयापन कर सके और गर्व के साथ कह सके कि मैं भारतीय हूं।'' ❑

(लेखक स्टेट्समैन के संपादकीय परामर्शदाता हैं।

ई-मेल : rajamanirc@gmail.com)

आस्था IAS

(सफलता का आधार) (IAS/PCS) में उच्च रैंक पर सफलता की परम्परा जारी

नया बैच 14 Aug.

आर.कुमार, शाह फैसल, इसरार अहमद, पंकज मिश्रा

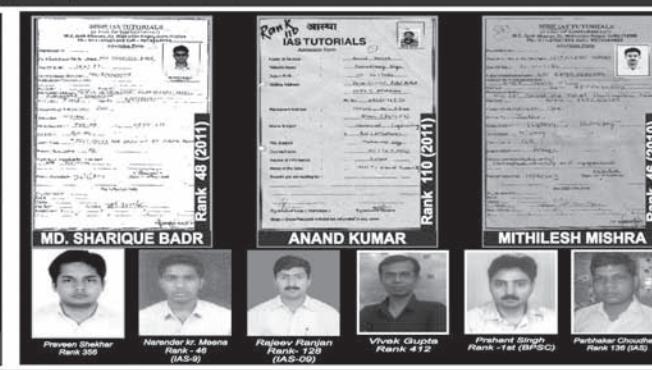

सामान्य अध्ययन

(Mains + Pre. + CSAT)

"क्या पढ़ें? क्या छोड़ें? जो पढ़ें उसे कैसे याद करें?

by **R.Kumar** & Team

Mob.: 9810664003

(सामान्य अध्ययन की अब तक की सर्वश्रेष्ठ टीम, 15 वर्ष का अनुभव)

समाजशास्त्र

by **Pankaj Mishra**

(UPPCS में चयनित)

Ph.: 09415639012, 08800545471

विगत दो वर्षों से सर्वोच्च अंक 381, 378

इलाहाबाद में भी बैच प्रारंभ

(श्री साईं गुरुकुल IAS एकेडमी) A.N.Jha हॉस्टल के सामने (विश्व विद्यालय चौराहा)

Crash Course एवं Test Series प्रारम्भिक परीक्षा परिणाम के तुरंत बाद

आस्था IAS एक बेहतर विकल्प क्योंकि

- सभी शिक्षक विषय विशेषज्ञ एवं अनुभवी
- श्रेष्ठ नोट्स, गहन अध्यापन, उच्चस्तरीय समझ के आधार पर To the point लेखन शैली का विकास
- प्रोजेक्टर, इंटरनेट तथा अन्य आधुनिक सुविधाओं का उपयोग
- UPSC के साथ UP., BPSC, MP, RAJ, JPSC, U.K., HAR., CHATTIS.PCS की भी तैयारी
- सहायक सुविधाएँ जैसे सफल छात्रों द्वारा मार्गदर्शन, शाह फैसल, (1st Rank- IAS 09) मिथिलेश मिश्रा (46th Rank IAS 10) नरेन्द्र मीणा (46th Rank IAS 09) प्रशांत सिंह, राजीव रंजन, प्रभाकर चौधरी विवेक गुप्ता द्वारा आस्था IAS के छात्रों का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन किया गया

जीवंत पत्राचार पाठ्यक्रम उपलब्ध

सामान्य अध्ययन + CSAT, समाज शास्त्र एवं अन्य विषय

(लगभग 80% प्रश्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में नोट्स से) (Printed Notes + Class Notes, Test Paper

पत्राचार पाठ्यक्रम शुल्क →

G.S. (Mains) - ₹5500/-
समाज शास्त्र - ₹ 5500/-
Mains + Pre. + CSAT - ₹ 8,000/-
प्रारम्भिक परीक्षा Paper I & II - ₹ 4500/-

फोन से संशय समाधान सुविधा भी उपलब्ध
ड्राफ्ट AASTHA IAS के नाम से बनाये

वैकल्पिक विषयः- इतिहास, उर्दू, लोक प्रशासन, मैथिली, तथा अन्य... आवासीय सुविधा उपलब्ध

M-2, Jyoti Bhawan, Mukherjee Nagar, Delhi-09, PH.: 011 27651392, 9810664003

YH-93/2012

कृषि विकास : एक विश्लेषण

● सुरिंदर सूद

भारतीय कृषि ने एक लंबा सफ़र तय किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से लेकर अब तक का यह सफ़र काफी कठिन रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जहां खेती का मुख्य ज़ोर गुज़ारे के लिए भोजन उत्पादन पर होता था, वहीं अब ऐसी कृषि का प्रबंधन हो रहा है जिसमें बाज़ार की ताक़तों का ज़ोर है। आज बाज़ार की मांग के अनुसार खेती की जाती है। इसके अंतर्गत खेती की दिशा उस ओर उन्मुख रही है जिधर लाभदायक फ़सलें होती हैं और यही बात बागवानी, पशुपालन, मछलीपालन और सकल घरेलू उत्पाद (कृषि) पर लागू होती है। शुरुआती दौर में प्रगति तेज़ रही और अनाज उत्पादन अधिक हुआ खासतौर से गेहूं और चावल का उत्पादन उल्लेखनीय रहा। उस समय इन चीज़ों की ज़रूरत भी थी। लेकिन बाद में गैर-खाद्य पदार्थों की मांग भी बढ़ी। लेकिन बाद में जिन चीज़ों की मांग बढ़ी उन्होंने खेती को प्रभावित किया। ऐसी चीज़ों में बढ़ती आबादी को जीविका प्रदान करना भी शामिल है। ज़मीन के टुकड़े न हों, इसका भी ध्यान रखना है और जोतें ऐसी हों, जिस पर सुविधाजनक ढंग से खेती की जा सके यह भी ज़रूरी है साथ ही किसानों को यह भी ध्यान रखना था कि पर्यावरण में गिरावट न आए और प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण न हो पाए। उनमें मिट्टी और पानी के बचाव के उपायों का ध्यान रखना भी ज़रूरी था। अब इन सबसे बढ़कर एक और समस्या आ गई है और वो है- जलवायु परिवर्तन। इसी का नतीज़ा है कि खेती की लाभप्रदता कम हो गई है। काफी संख्या में किसान खासतौर से ग्रामीण युवक इस धंधे को छोड़कर वैकल्पिक रोज़गार के साधनों में लगना चाहते हैं।

देश के विभाजन से कृषि क्षेत्र को जबर्दस्त धक्का लगा था। खेती के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले अनेक क्षेत्र देश से बाहर चले गए। उन इलाक़ों में सिंचाई सुविधाए थीं और कपास की जबर्दस्त खेती होती थी। चावल और जूट की पैदावार वाले अनेक इलाक़े पाकिस्तान में चले गए। भारत में जो इलाक़े बचे वहां अनाज की पैदावार कम थी और पैदावार एक जैसी नहीं होती थी। इसका कारण था खेती का वर्षा पर निर्भर होना। इन इलाक़ों में कृषि विकास के लिए ज़रूरी मूल सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं। 50 और 60 के दशक में खेती में जो ज्यादा पैदावार दिखाई दी वो अधिकांशत: बेहतर खेती के कारण नहीं बल्कि खेती का क्षेत्रफल बढ़ने के कारण थी। 1950 में जहां 19 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर खेती होती थी वहीं 1970 में यह बढ़कर 141 मिलियन हेक्टेयर हो गई। हालांकि देश में खेती की पैदावार में घट-बढ़ होती रही है। 1950 में जहां 2.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष कृषि विकास की दर थी वहीं 1960 में ये विकास दर घटकर 1.7 प्रतिशत हो गई। लेकिन 70 के दशक में इसमें बढ़ोतरी दिखाई दी और यह 2 प्रतिशत रही। 1980 के शुरुआती दशक में ये दर 2.8 प्रतिशत देखी गई जबकि 1990 के दशक में वृद्धिदर 3.2 प्रतिशत थी। इसके बाद 2000 के शुरू के दशक में उसमें गिरावट आ गई और ये 3 प्रतिशत रह गई। इसके मुख्य कारण 2002 और 2009 में वर्षा में कमी थी।

खाद्यान्नों और दलहनों की पैदावार भी कम होती गई। 1960 के दशक से शुरू होकर 1990 तक इसमें कुछ कमी आई। इसका कारण ये कहा जा सकता है कि खेती को प्राथमिकता नहीं मिली और दूसरी यह कि पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान खेती को महत्व नहीं दिया गया। इस दौरान खेती की पैदावार भी कम हुई और जनसंख्या भी बढ़ी। लेकिन भूमि क्षेत्र में कुछ संस्थागत सुधार हुए जिनका खेती पर बेहतर असर पड़ा। इनमें जमींदारी प्रथा की समाप्ति एवं असामी संरक्षण प्रमुख थे। पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान असामी व्यवस्था में सुधार किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान पहली बार किसानों की स्थिति में परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिकी का सहारा लिया गया जिसके कारण खेती की उपज बढ़ी। इससे विज्ञान आधारित खेती का रास्ता साफ़ हुआ।

खेती की कुल पैदावार में फ़सलों का योगदान 80 प्रतिशत से घटकर 1971 के दशक में 67 प्रतिशत रह गया। हालांकि गेंहू और चावल की पैदावार बढ़ी और देश में हरित क्रांति सफल हुई। दूसरी तरफ पशुधन विकास के क्षेत्र में अच्छी प्रगति दिखाई दी। 1950 में जहां पशुधन विकास 16 प्रतिशत था वहीं अब यह 20 प्रतिशत के आस-पास पहुंच गया है। इसी तरह से सकल घरेलू उत्पाद में मछली पालन का योगदान भी 1950 के 0.6 प्रतिशत से बढ़कर हाल के वर्षों में 4.8 प्रतिशत हो गया है। इसी अवधि में वानिकी का योगदान 3.6 प्रतिशत से 5.2 प्रतिशत रहा है।

उगाई जाने वाली फ़सलों में भी काफी परिवर्तन आया है। अब किसान उन फ़सलों पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं जिनमें लाभ ज्यादा है। इनमें फल, सब्ज़ियां और गन्ना शामिल हैं। राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी द्वारा संकलित किए गए आंकड़े साबित करते हैं कि कृषि में जहां खाद्यानों का योगदान 1950 में 36.2 प्रतिशत रहता था वहीं अब यह 30 प्रतिशत

हो गया है जबकि फल और सब्जियों का योगदान तीन गुना अधिक हो गया है। पहले जहां ये 8.2 प्रतिशत होता था वहीं अब 25 प्रतिशत हो गया है। 1950 में जहां किसानों की आमदनी में गन्ने का योगदान 3.6 प्रतिशत होता था वहीं अब यह 7.3 प्रतिशत हो रहा है। लेकिन दालों और तिलहनों में प्रगति की रफ़्तार उतनी तेज़ नहीं रही।

ये ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि भारतीय कृषि और बाज़ार के बीच तालमेल भी बढ़ा है। ये बात सिर्फ़ नक़दी फ़सलों पर ही नहीं लागू होती बल्कि खाद्यानों और अन्य फ़सलों पर भी लागू होती है। संकलित किए गए आंकड़ों से मालूम होता है कि 1950 में जहां चावल की पैदावार 20.6 मिलियन टन थीं इसमें से केवल 6.2 मिलियन टन बाज़ार पहुंचा। अगर 2007 से इसकी तुलना करें तो देखेंगे कि लगभग 70 प्रतिशत पैदावार मंडियों में लाई गई। यही बात मोटे अनाजों की उपज पर भी लागू होती है। 1950 में जहां कुल पैदावार का 24 से 27 प्रतिशत मोटे अनाज बाज़ार में आते थे वहीं 2007-08 के दौरान ये प्रतिशत 53 से 76 प्रतिशत तक बढ़ गया। इनमें मक्का, ज्वार, बाजरा आदि शामिल हैं।

दलहनों और तिलहनों का वाणिज्यीकरण इससे भी ज्यादा हुआ है। किसान इन फ़सलों को ज्यादातर बाज़ार में बेचने के लिए उगाते हैं और इनका सिर्फ़ दस प्रतिशत ही अपने लिए रखते हैं। इसमें बीज के रूप में रखा जाने वाला अंश भी शामिल है। यही बात दूध, अंडे और मांस तथा बागबानी की पैदावार पर भी लागू होती है। अब खेती की पैदावार का एक अंश निर्यात भी किया जा रहा है। अनुमान लगाया गया है कि कुल 14.8 प्रतिशत पैदावार निर्यात की जाती है। पिछले दो दशकों के दौरान खेती की उपज के निर्यात में बहुत परिवर्तन आए हैं और इनमें अधिक विविधता आई है। अब अनेक प्रकार के फल, सब्जियां, फूल, कपास, पशुधन उत्पाद और चीनी निर्यात की जा रही है। अन्य जो चीज़ें निर्यात कीं जा रही हैं उनमें चावल (बासमती और गैर-बासमती), गेहूं (कभी-कभी सरकारी नीतियों के अनुसार), खली, मसाले और समुद्री उत्पाद शामिल हैं। 1990-91 में जहां कृषि क्षेत्र से 6,012.76 करोड़ रुपये का माल निर्यात किया गया था वहीं 2009-10 में ये निर्यात बढ़कर 90,000 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। लेकिन भारतीय कृषि के सामने कुछ चुनौतियां भी मौजूद हैं। इनमें से अनेक का सामना उपयुक्त नीतियां बनाकर करना पड़ेगा। मूलस्तर पर भारत में दुनिया का कुल 2.3 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र है जबकि जल संसाधन 4.2 प्रतिशत हैं, चरागाह का क्षेत्र 0.5 प्रतिशत है। जबकि भारत को दुनिया की 18 प्रतिशत आबादी का भरण-पोषण करना पड़ता है। साथ ही दुनिया के 15 प्रतिशत मवेशी यहां पाए जाते हैं। इसके अलावा भारत के राष्ट्रीय स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान जहां 1950 में 51 प्रतिशत होता था वहीं 2011-12 में यह सिर्फ़ 14.5 प्रतिशत हो गया है। यह एक स्वागतयोग्य घटनाक्रम है क्योंकि इससे संकेत मिलता है कि भारत कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। देश की आबादी का 52 प्रतिशत भाग अब भी खेती में काम करता है। इसका मतलब यह है कि देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा अब भी गुज़ारे के लिए खेती पर निर्भर करता है। जन शक्ति के खेती पर निर्भर न रहने के चलते जो परिवर्तन आए हैं उनमें एक यह भी है कि अब कानून बनाकर खेती के टुकड़े न होने देने की व्यवस्था करनी होगी।

खेती योग्य ज़मीन की प्रतिव्यक्ति पीछे उपलब्धता 1951 से लेकर अब तक बराबर घटती रही है। 1950 में जहां ये 0.48 हेक्टेयर थी वहीं 1981 में 0.20 हेक्टेयर रह गई जब 2001 में यह 0.15 हेक्टेयर प्रतिव्यक्ति रह गई। अब जबकि देश खेती से गैर खेती उद्देश्यों के लिए भू उपयोग के मामले में बढ़ रहा है इस दिशा में और गिरावट आने की संभावना है। अब औद्योगीकरण के चलते खनन, उद्योग लगाने, मूल सुविधा जुटाने और आवास के लिए भूमि उपयोग करने का रुझान ज्यादा है। उससे से भी बुरी बात यह है कि जितनी भूमि उपलब्ध है वो अनेक कारणों से ख़राब हो रही है। इनमें मिट्टी का कटाव, जल भराव, क्षारीकरण और ज़मीन में रेह पैदा होना प्रमुख है। फ़सलों के लिए उपयोगी पदार्थ भूमि में कम हो रहे हैं जिससे सघन खेती और उर्वरकों के इस्तेमाल में दिक्क़तें आ रही हैं।

उक्त के अलावा खेती के विकास के लिए एक बहुत ज़रूरी चीज़ है सिंचाई की सुविधा। पानी खेती के लिए बहुत ज़रूरी है और वह धीरे-धीरे देश के अनेक भागों में दुर्लभ हो रहा है जो बड़ी चिंता की बात है। ध्यान देने की बात है कि देश के अनेक भागों में आज भी सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता काफी नहीं है। हालांकि उपयुक्त प्रबंधन के जरिये इसकी भरपाई की जा सकती है। देश में कुल 1,160 मिलीमीटर वर्षा होने का अनुमान है जो 4,000 अरब घनमीटर पानी के बराबर है। इसका एक बहुत बड़ा भाग समुद्र में बह जाता है जिसके साथ मिट्टी भी कट कर बह जाती है। अगर इस पानी को इकठ्ठा कर लिया जाए तो बहुत कुछ हद तक पानी की भरपाई हो सकती है। अनुमान लगाया गया है कि देश में जलाशयों का इस्तेमाल करके 1,123 अरब घनमीटर पानी की व्यवस्था की जा सकती है। यह ज़रूरत के 28 प्रतिशत के बराबर है। वर्षा जल संचयन के जरिये पानी भरपाई देश की बहुत सख्त ज़रूरत बन गई है।

खेती में सिंचाई के पानी का इस्तेमाल कुशल तरीक़े से नहीं किया जाता। सिंचाई मुख्यत: नहरों के जरिये की जाती है जिसमें पानी की बहुत बर्बादी होती है। पानी की दरें भी कम हैं जिससे बर्बादी होती है। भू-जल के बेतहाशा इस्तेमाल के कारण कुएं सूख रहे हैं। धरती के ऊपर और नीचे मौजूद पानी को इस्तेमाल को ठीक ढंग से नियमित करने की ज़रूरत है।

स्पष्ट है कि भारत में जिस तरह से खेती का काम-काज हो रहा है, उसे अलग-थलग करके नहीं देखा जा सकता। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से जो अनेक मुद्दे रहे हैं उनके साथ खेती को भी जोड़ना होगा। पिछले 65 वर्षों से खेती इन मुश्किलों के साथ आगे बढ़ती रही है, हो सकता है कि आगे भी कुछ समय तक ऐसा ही चलता रहे। लेकिन अगर ये मुद्दे सुलझा लिए जाते हैं और उपयुक्त तथा अनुकूल कृषि विकास नीतियां तय की जाती हैं तो निश्चय ही भारत में खेती विकास आगे चलकर और बेहतर हो सकता है। ❑

(लेखक जाने-माने कृषि पत्रकार हैं और फिलहाल बिजनेस स्टैंडर्ड **के परामर्शदाता संपादक के रूप में काम कर रहे हैं।**
ई-मेल : surinder.sud@gmail.com)

भारत में अधोसंरचना विकास

● नमिता मेहरोत्रा

आर्थिक विकास और अधोसंरचना के बीच संबंध क्षणिक नहीं होता। यह एक सतत् प्रक्रिया है और विकास में प्रगति तभी होती है, जब उसे अधोसंरचना का आधार मिले, वह साथ-साथ बढ़ता रहे और आगे-आगे चलता रहे। आर्थिक विकास की स्वत:स्फूर्त प्रक्रिया की धारणा को मूर्त रूप देने के अपने घोषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है।

-डॉ. वी.के.आर.वी. राव, प्रख्यात अर्थशास्त्री

समुचित विकास अर्थव्यवस्था के संपोषित विकास पर निर्भर होता है, जो निर्णायक रूप से अधोसंरचना के धारणीय विकास पर निर्भर होता है परंतु अधोसंरचना में निवेश आसानी से नहीं हो पाता, क्योंकि उसके लिए निवेश चाहिए, किंतु उससे लाभ अधिक नहीं हो पाता। इस प्रकार के निवेश को आमतौर पर सामाजिक लाभ के आधार पर उचित ठहराया जाता है, न कि वित्तीय संभाव्यता के आधार पर।

अगले दो दशकों में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लिहाज से भारत के विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की संभावना व्यक्त की जा रही है। वर्तमान में चीन और भारत विश्व की सबसे तेज़ी से बढ़ रही अर्थव्यवस्थाओं में प्रमुख हैं। विकास की इस गति को बनाए रखने की आवश्यकता है ताकि यह तेज़ी धीमी न पड़े। भारत में विश्वस्तरीय अधोसंरचना के अभाव को विकास के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा माना जाता है। बढ़ते शहरीकरण के कारण अधोसंरचना अर्थात बुनियादी ढांचे की मांग तेज़ी से बढ़ी है। यह मांग इतनी जबर्दस्त है कि यह अर्थव्यवस्था के बूते के बाहर होती जा रही है।

अधोसंरचना क्षेत्र

अधोसंरचना के प्रमुख क्षेत्रों की ओर नज़र डालने से स्पष्ट होता है कि दूरसंचार क्षेत्र को छोड़कर, जहां दूर घनत्व (फोन सुविधाओं का विस्तार) काफी ऊंचा है (1981 के 0.31 की तुलना में मई 2012 में 79.28) और उनकी दरें संभवत: विश्व में निम्नतम हैं। अन्य क्षेत्रों में न तो उतना विकास हुआ है और न ही उनकी सेवाएं स्तरीय हैं।

भारत में 33 लाख किमी लंबी सड़कों का संजाल है जोकि विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सड़क नेटवर्क है। इन सड़कों पर देश का 65 प्रतिशत माल परिवहन और 80 प्रतिशत यात्री यातायात होता है। कुल यातायात का 40 प्रतिशत राष्ट्रीय राजमार्गों से होकर गुज़रता है, परंतु यह देश के कुल सड़क नेटवर्क का 1.7 प्रतिशत ही है (71,772 कि.मी.)। ग्रामीण सड़कों की कुल लंबाई 26.5 लाख किमी है। राष्ट्रीय राजमार्गों का कुल 20 प्रतिशत हिस्सा ही चार लेन का है, जबकि 50 प्रतिशत अंश दो लेन का है। तीस प्रतिशत सड़कें एक लेन वाली है। राज्यों के राजमार्ग भी उपेक्षा के शिकार रहे हैं।

जहां तक भारतीय रेलवे का प्रश्न है, उसकी लंबाई 64 हज़ार किमी की है और यह एशिया का सबसे बड़ा रेल नेटवर्क है। स्वतंत्रता के बाद से इसमें कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई हैं। स्वतंत्रता के समय कुल रेलमार्ग 53,596 किलोमीटर लंबा था। अत: पिछले 65 वर्षों में लगभग 10 हज़ार किमी के रेलमार्ग का विस्तार हुआ है। परिणाम यह है कि अधिकांश रेलमार्ग क्षमता से अधिक भार वहन कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि स्वतंत्रता के बाद से माल और यात्री यातायात में अपेक्षित वृद्धि नहीं हुई।

विद्युत के क्षेत्र में भारत की कुल स्थापित क्षमता इस समय 2.03 लाख मेगावाट की है, जबकि 1947 में कुल स्थापित क्षमता 1,362 मेगावाट की थी। इसमें से तापीय विद्युत का अंश 66.32 प्रतिशत है जबकि जल विद्युत का 19.2 प्रतिशत। स्वतंत्रता के बाद से प्रति व्यक्ति खपत में 49 गुना वृद्धि हुई है। वर्ष 2010-11

में प्रतिव्यक्ति 813.3 किलोवाट प्रतिघंटा खपत होती थी। परंतु यह सब प्रति व्यक्ति विद्युत खपत के विश्व औसत का एक तिहाई से भी कम है। अपर्याप्त निवेश और दयनीय संधारण के कारण 8.5 प्रतिशत विद्युत का अभाव है। वितरण के क्षेत्र में औसत तकनीकी और वाणिज्यिक हानि 27 प्रतिशत की होती है। तेरहवें वित्त आयोग के अनुमानों के अनुसार वर्ष 2014-15 में इस हानि के बढ़कर ₹ 1.16 लाख करोड़ (11 खरब 60 अरब) तक पहुंच जाने की आशंका है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में, 22 करोड़ यात्रियों की परिवहन क्षमता का नौवां सबसे बड़ा बाज़ार भारत था। माल परिवहन (कार्गो) के मामले में भी भारत का बाज़ार काफी आकर्षक था। परंतु विमान यात्रा अधिक लोकप्रिय नहीं है। प्रतिवर्ष एक व्यक्ति केवल 0.04 विमान यात्राएं करता है। भारतीय नागरिक विमानन उद्योग दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद और बंगलुरू हवाईअड्डों के लिए निजी क्षेत्र से तीन खरब रुपये आकर्षित करने में सफल रहा। भारतीय विमान पत्तन प्राधिकरण की योजना देश में 35 गैर-मेट्रो हवाईअड्डों के विकास की थी। इनमें से 26 का विकास हो चुका है और शेष का विकास इस वित्त वर्ष के अंत तक पूरा कर लिया जाएगा।

अधोसंरचना क्षेत्र

प्रस्तुत आलेख के संदर्भ में निम्नलिखित क्षेत्रों को अधोसंरचना की व्यापक परिभाषा में शामिल किया गया है:

1. विद्युत (उत्पादन, पारेषण और वितरण समेत) और विद्युत संयंत्रों का संधारण एवं मरम्मत;
2. गैर-परंपरागत ऊर्जा (पवन ऊर्जा और सौर ऊर्जा सहित);
3. जलापूर्ति और स्वच्छता (ठोस कचरा प्रबंधन सहित);
4. दूर संचार;
5. सड़क और पुल;
6. बंदरगाह;
7. अंतर्देशीय जलमार्ग;
8. विमान तल;
9. रेलवे (रोलिंग स्टाक एवं लोक परिवहन प्रणाली सहित);
10. सिंचाई (वाटरशेड विकास सहित);
11. भंडारण और
12. तेल एवं गैस पाइपलाइन।

स्रोत : www.infrastructure.gov.in

तालिका-1
अधोसंरचना में निवेश

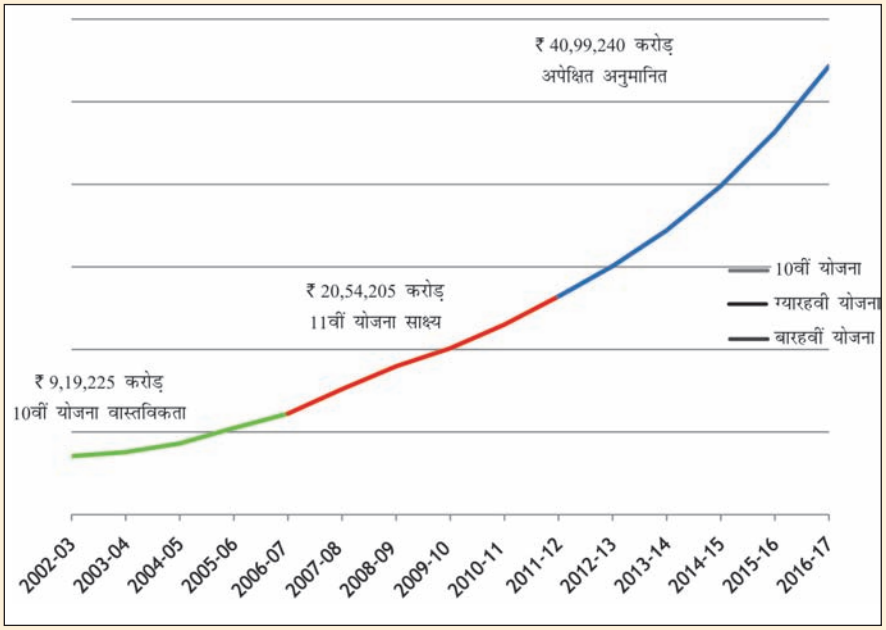

भारत के विदेश व्यापार की कुल मात्रा का 95 प्रतिशत समुद्र मार्ग से होता है। देश में 13 बड़े और 187 छोटे-मध्यम दर्ज़े के बंदरगाह हैं। वर्ष 2011-12 में बड़े बंदरगाहों से 56 करोड़ 1 लाख टन के आयात-निर्यात हुआ। सभी बंदरगाहों पर कुल मिलाकर 91 करोड़ 50 लाख टन के माल की आवाजाही हुई। बंदरगाहों की क्षमता के उपयोग में भी सुधार आया है।

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अधोसंरचना विकास

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारंभिक दौर में लोगों का ऐसा विश्वास था कि कृषि को अधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है ताकि लोगों की भोजन की आवश्यकता को पूरी की जा सके। भारी उद्योगों की स्थापना को भी काफी महत्व दिया गया था। बुनियादी ढांचे की आवश्यकताएं केवल उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के संदर्भ में महसूस की जा रही थी। वे योजनाओं के घोषित लक्ष्य नहीं थे। परंतु सिंचाई संसाधनों और विद्युत परियोजनाओं के लिए भारी आवंटन किया गया था, क्योंकि उन्हें कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और उद्योगों के लिए आवश्यक माना गया। बाद में 60 और 70 के दशक में सड़कों के विकास ने भी ज़ोर पकड़ लिया।

अस्सी के दशक के मध्य के उपरांत विकास प्रक्रिया को गति देने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी को प्राप्त करने पर ज़ोर दिया जाने लगा। इसके कारण देश में दूरसंचार प्रौद्योगिकी का ज़ोरदार विकास हुआ। नौवीं योजना और उसके बाद, पंचवर्षीय योजनाओं में अधोसंरचना के विकास पर निश्चयात्मक बल प्रदान किया जाने लगा। अब से पूर्व की दोनों योजनावधियों में अधोसंरचना पर निवेश लगभग दोगुना बढ़ गया।

अधोसंरचना निवेश और सकल घरेलू उत्पाद

जीडीपी के अनुपात के तौर पर अधोसंरचना निवेश का योगदान दसवीं योजना के अंत में 5.7 प्रतिशत से बढ़कर ग्यारहवीं योजना के अंतिम वर्ष में 8 प्रतिशत तक पहुंच जाने की संभावना थी। यह अपेक्षा है कि बारहवीं योजना के अंत तक इस निवेश का जीडीपी में योगदान बढ़कर 10 प्रतिशत तक पहुंच जाएगा। जीडीपी के अनुपात के रूप में अधोसंरचना निवेश का दसवीं और ग्यारहवीं योजना में जो योगदान रहा उसे निम्नलिखित चित्र-2 में दर्शाया गया है। मई 2011 में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार अमरीका अधोसंरचना में अपने जीडीपी का 2.5 प्रतिशत निवेश करता

चित्र-2
जीडीपी प्रतिशत के रूप में अधोसंरचना निवेश

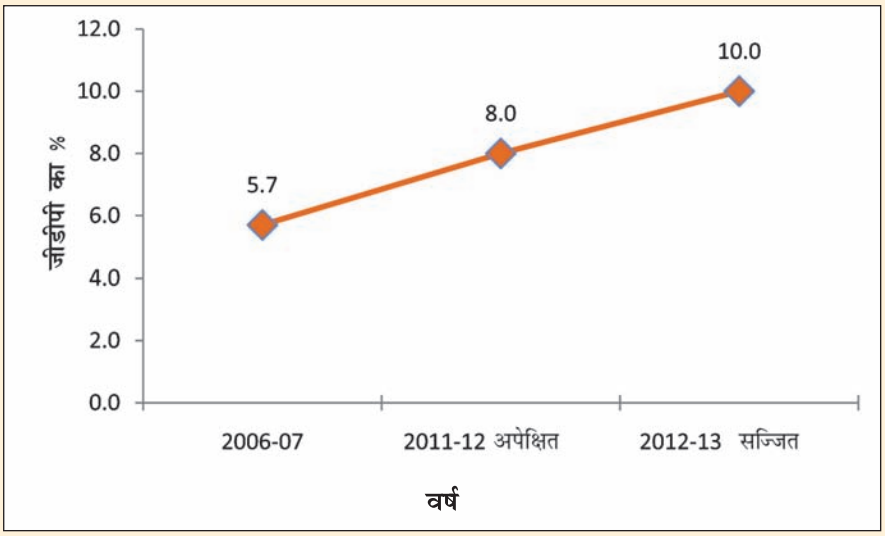

है जबकि चीन 9 प्रतिशत और यूरोप 5 प्रतिशत का निवेश करता है।

क्षेत्रवार विश्लेषण

अधोसंरचना क्षेत्र में किए गए निवेश के क्षेत्रवार विश्लेषण से पता चलता है कि दोनों योजनावधियों में जो निवेश हुआ उसका एक तिहाई विद्युत क्षेत्र में किया गया जबकि सड़क क्षेत्र में लगभग 15 प्रतिशत निवेश हुआ। परंतु दसवीं और ग्यारहवीं योजनाओं के बीच दूरसंचार, विमानतल और तेल एवं गैस पाइपलाइन क्षेत्र में निवेश की दर सबसे अधिक रही।

अधोसंरचना विकास कार्यक्रम

महत्वपूर्ण अधोसंरचना कार्यक्रमों में राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम (एनएचडीपी) शुमार है। यह अब तक का सबसे सफल कार्यक्रम रहा है। प्रधान मंत्री ग्रामीण सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) एक हज़ार से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ने वाली ग्रामीण सड़कों की विकास योजना है। पूर्वोत्तर राज्यों को शेष भारत से जोड़ने और उनके विकास के लिए एक और कार्यक्रम तैयार किया गया है जिसे पूर्वोत्तर क्षेत्र हेतु विशेष त्वरित सड़क विकास कार्यक्रम का नाम दिया गया है। जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन (जेएनएनयूआरएम) के माध्यम से शहरों के सुधार का एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया गया हैं इसमें शहरी अधोसंरचना के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई, सड़क, आवास, जलापूर्ति, विद्युतीकरण और दूरसंचार सुविधाओं के विस्तार के लिए भारत निर्माण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। विद्युत क्षेत्र में राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (आरजीजीवीवाई) के माध्यम से सभी ग्रामीण घरों में बिजली पहुंचाए जाने का प्रस्ताव है।

बारहवीं योजना का दृष्टिकोण

बारहवीं योजना के दृष्टि-पत्र में कहा गया है कि आर्थिक विकास को गति देने के लिए अधोसंरचना निवेश की गति को बढ़ाने पर ज़ोर देना ज़ारी रहना चाहिए। चूंकि 12वीं योजना में सार्वजनिक संसाधनों की सबसे अधिक आवश्यकता पिछड़े और दूरस्थ क्षेत्रों में होगी, इसलिए उन पर दबाव बना रहेगा। अत: लक्ष्यों को पूरा करने के लिए निजी निवेश की आवश्यकता होगी।

अधोसंरचना का वित्तपोषण और निजी निवेश

योजना आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. मोंटेक सिंह अहलूवालिया का कहना है कि ''केंद्र और राज्य सरकारों को एक ऐसी अधोसंरचना रणनीति अपनानी होगी, जिसमें सार्वजनिक निवेश और सरकारी एवं निजी क्षेत्रों की भागीदारी (पीपीपी) का उचित सम्मिश्रण हो। सार्वजनिक निवेश को उन क्षेत्रों की ओर ले जाना होगा जहां निजी क्षेत्र के जाने की संभावना नहीं हो तथा अधोसंरचना के बाकी क्षेत्रों का विकास जहां तक संभव हो सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी (पीपीपी) में किया जाना चाहिए।''

परंपरा से भारत में अधोसंरचना विकास सार्वजनिक निवेश से ही होता रहा है। इसमें भी राज्य सरकारों की अपेक्षा केंद्रीय सरकार का योगदान अधिक रहा है। हालांकि अब

चित्र-3
क्षेत्रवार अधोसंरचना निवेश

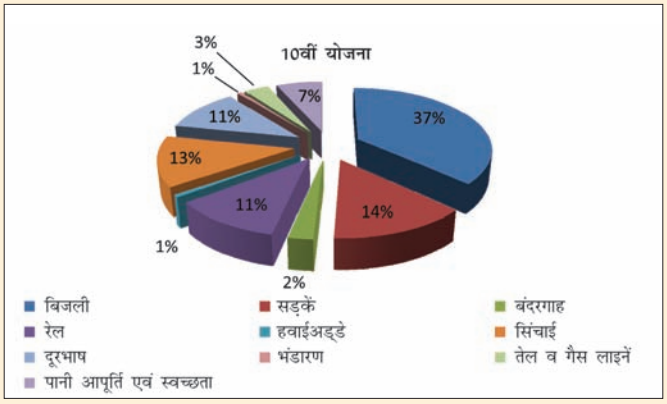

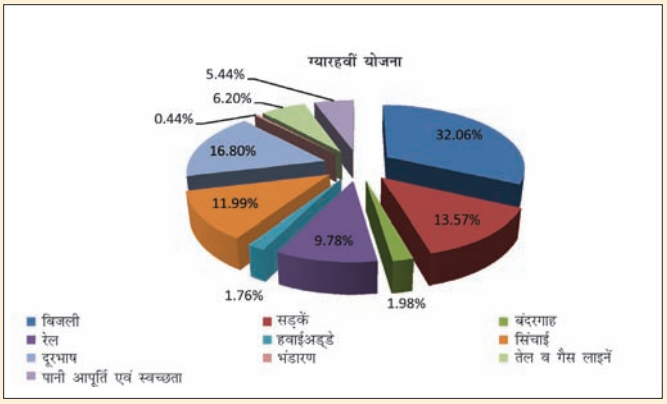

राज्यों से भी निवेश आने लगा है। ग्यारहवीं योजना में केंद्र सरकार के अंशदान का प्रतिशत दसवीं योजना के 40 प्रतिशत से घटकर 34 प्रतिशत पर आ गया। दसवीं और ग्यारहवीं योजनाओं के बीच राज्य सरकारों का अंश भी 35 प्रतिशत से घटकर 30 प्रतिशत पर आ गया। इससे स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र के निवेश में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही। चित्र-4 से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है।

अधोसंरचना निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र का अंश दसवीं योजना के 75 प्रतिशत से घटकर ग्यारहवीं योजना में 63 प्रतिशत पर आ गया, जिसके बारहवीं योजना में और गिरकर 50 प्रतिशत तक पहुंच जाने की आशा है (देखें चित्र-5)।

चित्र-4

अधोसंरचना निवेश में केंद्रीय एवं राज्य सरकारों तथा निजी क्षेत्र का अंश

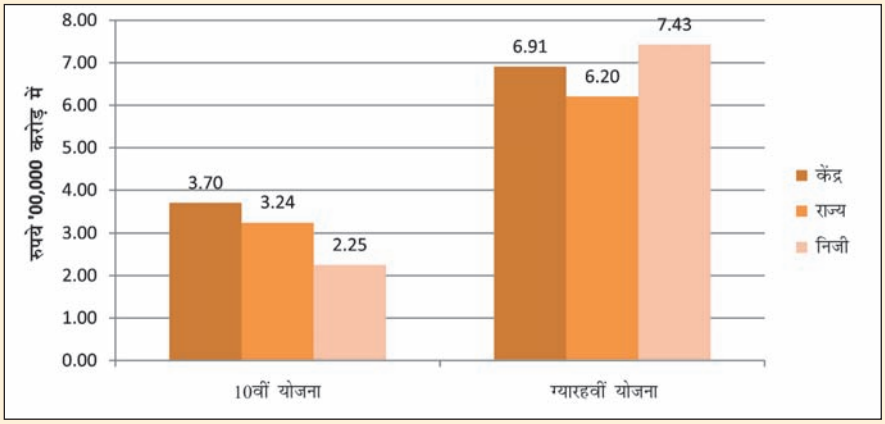

सरकारी एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी

अधोसंरचना निवेश को निजी क्षेत्र की भागीदारी से बड़ा बढ़ावा मिला है। सरकारी एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी (पीपीपी) अधोसंरचना क्षेत्र में निजी निवेश को आकर्षित करने का प्रमुख साधन है। अधोसंरचना क्षेत्र में निवेश से लाभ की अत्यंत क्षीण एवं विलंबित संभावना के कारण निजी क्षेत्र उससे दूर ही रहता है। सरकारी एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उससे दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों को निजी संसाधनों का संपुट मिलता है, बल्कि निजी क्षेत्र की क़ाबिलियत और दक्षता का भी जनसाधारण के लिए उपयोग किया जा सकता है।

सरकारी एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी का आशय निजी साधनों के माध्यम से अधोसंरचना विकास के लोक लक्ष्यों को पूरा करना है। यह दीर्घकालिक संविदा के माध्यम से हासिल किया जाता है। जिसमें निर्मित होने वाली संपत्तियों और उनके संधारण के बारे में पूरा विवरण स्पष्ट रूप से दिया रहता है। इनमें से अधिकतर परियोजनाओं का प्रयोग करने वालों को उसका भुगतान करना होता है और इस प्रभार (शुल्क) को वसूलने का अधिकार निजी भागीदार को सौंप दिया जाता है।

सरकारी एवं निजी सहभागिता के विकास और दीर्घकालीन धारणीयता के अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए सरकार द्वारा समन्वित प्रयास किए गए हैं। इसमें मूल्यांकन और अनुमोदन तंत्र वाले एक संस्थागत संरचना की स्थापना शामिल है। वित्तीय सहायता की योजनाएं भी इसी के अंतर्गत हैं।

संस्थागत संरचना

देश में विश्व स्तरीय अधोसंरचना के निर्माण की नीतियां तैयार करने के इरादे से 2004 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में अधोसंरचना पर एक समिति (सीओआई) का गठन किया गया था। वर्ष 2009 इस समिति के स्थान पर मंत्रिमंडलीय अधोसंरचना समिति (सीसीआई) का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष भी प्रधानमंत्री ही थे। पीपीपी परियोजनाओं की संस्तुति और अनुमोदन के लिए पीपीपी मूल्यांकन समिति (पीपीपीएसी) का गठन किया गया है। राज्यस्तरीय पीपीपी परियोजनाओं की वित्तीय आवश्यकताओं की मंजूरी के उद्देश्य से एक अधिकार प्राप्त संस्था (ईआई) का गठन किया गया है।

वित्तीय सहायता

वीजीएफ योजना के तहत केंद्र सरकार पीपीपी परियोजना पर अमल के लिए निजी इकाई को 20 प्रतिशत तक का अनुदान प्रदान करती है। पिछले वित्त वर्ष में पीपीपीएसी और इआई ने कुल 390 परियोजनाओं को मंजूरी दी थी। इन योजनाओं पर कुल रुपये 3,05,010 करोड़ का निवेश हुआ था। पीपीपी परियोजनाओं को क़िफायती और दीर्घकालीन आधार पर आर्थिक सहायता देने के लिए भारतीय अधोसंरचना वित्तीय निगम लि. (आईआईएफसीएल) नाम का एक विशिष्ट संगठन बनाया गया है।

दस्तावेज़ों का मानकीकरण

केंद्र सरकार ने अधोसंरचना क्षेत्र में बोली लगाने से संबंधित दस्तावेजों का मानक निर्धारित कर दिया है। इसके साथ ही पीपीपी परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आदर्श संविदा समझौतों (मॉडल कंसेशन एग्रीमेंट्स-एमसीए) का भी मानकीकरण कर दिया गया है। बोली वाले दस्तावेज़ों और आदर्श संविदा

चित्र-5

अधोसंरचना निवेश में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी

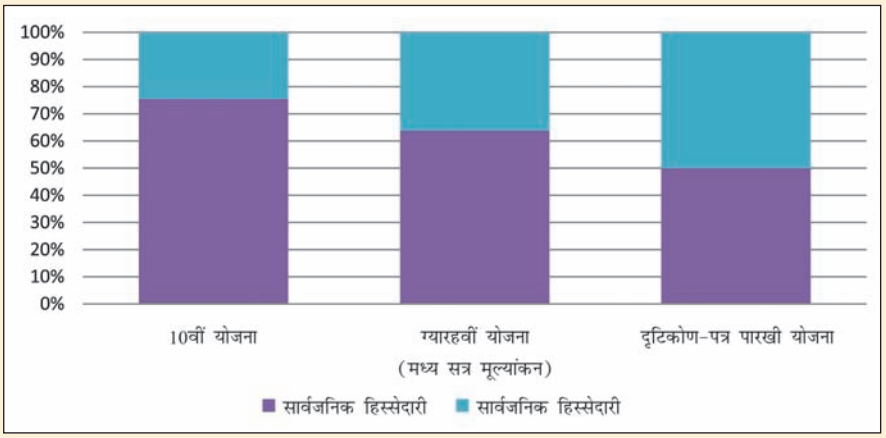

समझौतों में परियोजना विशेष में परिवर्तनों के लिए पर्याप्त लचीलेपन का प्रावधान है। मानकीकरण के कारण भारतीय संदर्भ में सर्वोत्तम अंतरराष्ट्रीय पद्धतियों को अपनाने में मदद मिलती है।

सरकारी एवं निजी सहभागिता (पीपीपी) परियोजनाओं की प्रगति

केंद्र सरकार के स्तर पर सड़कों, बंदरगाहों, विमानतलों, शहरी परिवहन और विद्युत पारेषण की परियोजनाओं में निजी क्षेत्र के साथ भागीदारी शुरू की गई है। राज्य सरकारों के स्तर पर भी जलापूर्ति, स्वच्छता, ठोस क़चरा प्रबंधन आदि जैसे क्षेत्रों में इस तरह की सहभागिता सफल हो रही है। इस प्रयास के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं- दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद और बंगलुरू के विमान तल, हरियाणा में पारेषण परियोजना, जयपुर किशनगढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग, गुड़गांव एक्सप्रेस वे, तूतीकोरिन, चेन्नई में कंटेनर टर्मिनल, अल्ट्रा मेगा विद्युत परियोजनाएं और कंटेनर और रेलगाड़ियों के परिचालन के ठेके।

विश्व बैंक ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि वर्ष 2006 के बाद से भारत में पीपीपी प्रयासों को शीर्ष वरीयता मिली है। विकासशील देशों में 2011 के पूर्वार्द्ध में जो नयी पीपीपी परियोजनाएं क्रियान्वित हुई हैं, उनमें से लगभग आधी भारत में लागू की गई हैं। विकासशील देशों में भारत पीपीपी के लिए सबसे बड़ा बाज़ार बन गया है। एशियाई विकास बैंक की एक हालिया रिपोर्ट में कहा गया है कि पीपीपी परियोजनाओं के क्रियान्वयन के मामले में भारत दक्षिण कोरिया और जापान जैसे विकसित देशों के समकक्ष है। 100 अंकों के पैमाने पर ऑस्ट्रेलिया को सबसे अधिक 92.3, दक्षिण कोरिया को 71.3, भारत को 64.8 और जापान को 63.7 अंक मिले हैं।

समस्याएं और अधोसंरचना निवेश संवर्द्धन के उपाय

यह विश्वास किया जाता है कि बाज़ार में पीपीपी परियोजनाओं सहित अधोसंरचनाओं को जज्ब करने की पर्याप्त क्षमता है। परंतु भूमि अधिग्रहण और पर्यावरणीय स्वीकृति में होने वाले विलंब के कारण यह क्षेत्र कुछ प्रभावित हुआ है। दीर्घकाल के लिए धनराशि आसानी से उपलब्ध नहीं होती और बैंक भी क्षेत्रवार ऋण देने के मामले में अपनी सीमा से अधिक दे चुके हैं। दीर्घकालीन ऋण की उपर्युक्त समस्या से निपटने के लिए वित्त मंत्रालय ने इंफ्रास्ट्रक्चर डेष्ट फंड्स (अधोसंरचना ऋण निधि संबंधी तंत्र) के गठन का अनुमोदन कर दिया है। आशय है कि परियोजनाओं का व्यावहारिक परिचालन शुरू होने के बाद उन्हें कुछ और वित्तीय सहायता दी जा सके। इंफ्रास्ट्रक्चर डेट फंड्स दीर्घकालिक बीमा और पेंशननिधियों को आकर्षित कर सकेंगे।

निष्कर्ष

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा है ''हमने अधोसंरचना, विशेषकर पीपीपी को काफी बढ़ावा दिया है। रेलवे, सड़कों, बंदरगाहों और नागरिक विमानन में निवेश के ढेर सारे रास्ते खुल रहे हैं।''

अधोसंरचना विकास के लिए दीर्घकालिक संपोषणीय निवेश की आवश्यकता होती है। समूचे निवेश कार्यक्रम की निर्णायक सफलता के लिए न केवल क्षेत्रवार कड़ी निगरानी की आवश्यकता है, बल्कि नीतिगत वातावरण को भी इतना गतिशील बनाने की ज़रूरत है कि वह वैश्विक आर्थिक परिवेश के अनुसार अपनेआप को ढाल सके। इसके अतिरिक्त चूंकि अधोसंरचना के विकास के लिए पीपीपी के माध्यम से निजी निवेश का प्रवाह बढ़ने की संभावना है, यह ज़रूरी है कि संस्थागत संरचनाओं को सुदृढ़ बनाया जाए और निवेश संबंधी निर्णय स्पष्ट सिद्धांतों के आधार पर लिए जाएं ताकि बाद में सरकार का कोई दायित्व नहीं रहे। बारहवीं योजना संभवत: भारतीय अर्थव्यवस्था को विकास के उच्च पथ पर ले जाएगी। यह तभी संभव होगा जब अधोसंरचना क्षेत्र अर्थव्यवस्था की गति से भी अधिक तेज़ी से आगे बढ़े। ❑

(लेखिका योजना आयोग में निदेशक (अधोसंरचना) हैं।
ई-मेल : namita.m@nic.in)

योजना
आगामी अंक

सितंबर 2012

योजना का सितंबर 2012 अंक इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी पर केंद्रित होगा।
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 10 ।

अक्तूबर 2012

योजना का अक्तूबर 2012 अंक स्वास्थ्य एवं पोषण पर केंद्रित होगा
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 10 ।

भारत में शिक्षा व्यवस्था : 1947-2012

● जे.वी. विलानिलम

आधुनिक शिक्षा की ख़ासतौर से भारत में तब शुरुआत हुई जब 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। लेकिन इसके पहले भी 18वीं सदी में देश के राजा-महाराजाओं, समृद्धजनों और संभ्रात वर्ग के बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा दी जाती थी। परंपरागत प्रकार की शिक्षा के लिए गुरुकुल और अन्य संस्थान थें जो आमतौर पर गांवों में और धार्मिक संस्थानों द्वारा संचालित किए जाते थे। उन दिनों इन स्कूलों में जाने वाले छात्रों की संख्या सीमित हुआ करती थी।

लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभी क्षेत्रों में सभी वर्गों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसके लिए एक अलग से शिक्षा विभाग बनाया गया जिसे बाद में मानव संसाधन विकास प्रभाग कहा जाने लगा। इन प्रभागों की स्थापना केंद्र में शिक्षा विभाग के तौर पर और राज्यों में भी की गई जिसके द्वारा बड़े पैमाने पर शिक्षा की ज़रूरतें पूरी की जाती रहीं। 1947 में जनता के लिए शिक्षा को एक ज़रूरी क़दम के रूप में देखा गया क्योंकि उस समय राष्ट्रीय नेताओं ने महसूस किया कि सबके लिए शिक्षा पूरे देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए ज़रूरी है। कहा जा सकता है कि 20वीं सदी के दौरान दुनियाभर में सबको शिक्षा सुलभ कराने के लिए प्राथमिकता दी जाने लगी। इसके पहले का सिद्धांत 'टपक बूंद' सिद्धांत कहलाता था जिसका मतलब यह था कि उच्च वर्गों के लोगों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से सांस्कृतिक समझदारी का बूंद के टपकने जैसा अच्छा प्रभाव होगा और यह समाज के सभी स्तरों तक पहुंचेगी। इसके अलावा जनसंख्या के कुछ वर्ग ख़ासतौर से सभी जातियों की महिलाएं और समाज के ग़रीब तबकों के पुरुषों को शिक्षा उपलब्ध नहीं थी और इनको शिक्षित करने पर ध्यान नहीं दिया जाता था। यहां तक कि इन वर्गों के लोगों को पढ़ने-लिखने और गिनने तक का ज्ञान कराना ज़रूरी नहीं समझा जाता था।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का परिदृश्य एकदम बदल गया। हालांकि अब भी बहुत कुछ बदलना बाक़ी है। अगर इस ऐतिहासिक परिदृश्य पर ध्यान दें तो 21वीं सदी में भारत में पूर्व-प्रारंभिक, प्रारंभिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र की शिक्षा पर एक नज़र डालनी होगी और इस बात का भी जायज़ा लेना होगा कि तकनीकी, चिकित्सा और व्यवसायिक शिक्षा में किस तरह के परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं।

पूर्व-प्रारंभिक शिक्षा

भारत के योजना आयोग ने प्रारंभिक से पहले की शिक्षा सबको उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया है ताकि शिक्षा का सारा तंत्र पूरे देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो। यही कारण है कि जहां तक पूर्व-प्रारंभिक शिक्षा का सवाल है वह भी स्वास्थ्यचर्या और प्रारंभिक शिक्षा की तरह दोषपूर्ण और अनियमित चल रही है। बीमार और अस्वस्थ बच्चे प्राइमरी स्कूल नहीं जा पाते और अगर जाते भी हैं तो पढ़ाई पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। इस बात पर बच्चों के माता-पिता का ध्यान कम जाता है। वास्तविकता यह है कि अगर किसी खास जिले के खास गांव में पैदा हुए बच्चे पर शिक्षा की दृष्टि से पूरा ध्यान दिया जाए, और उसे स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं भी मिलें, तो वह उस क्षेत्र के अन्य बच्चों से आगे निकल सकता है। स्वास्थ्यचर्या व्यवस्था भी तब बराबर

महत्व की हो जाती है जब स्कूली शिक्षा उपलब्ध हो। दरअसल, स्वास्थचर्या कार्यकर्ता और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता को प्रारंभिक शिक्षा के लिए उसके हित में मिलकर काम करना चाहिए। जगह उपलब्ध न होने के चलते यहां इस विषय की ज्यादा चर्चा नहीं की जा रही है सिर्फ़ इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि 3 साल से कम आयु वाले बच्चों का अगर कोई नियमित सर्वेक्षण किया जाए तो मिलेगा कि ऐसे बच्चों को आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की देखरेख की ज़रूरत है। ऐसा करने पर कोई बच्चा स्वास्थ्यचर्या और प्रारंभिक शिक्षा से वंचित नहीं होगा।

इसके अलावा किसी गांव में उपलब्ध बच्चों की संख्या के आधार पर पंचायत उनके फायदे के लिए एक विद्यालय अथवा पूर्व प्रारंभिक शिक्षा का कोई संस्थान खोल सकती है। इस संदर्भ में कहना पर्याप्त होगा कि मानव संसाधन विभाग को पूर्व प्रारंभिक शिक्षा के हक़दार बच्चों की गिनती करने की ज़रूरत नहीं है। पूरे देश में वे लाखों की संख्या में मौजूद हैं। पूर्व-प्रारंभिक शिक्षा के लिए समुचित भवनों के निर्माण और ज़रूरी शिक्षकों की व्यवस्था करने के बाद अगर ज़रूरत हो तो यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होगी कि पंचायत प्रशासन इन बच्चों को अपने क्षेत्र में विद्यालय की सुविधा दिला सके। यह भी चर्चा का विषय है कि मानव संसाधन विभाग को पूरे सरकारी तंत्र के साथ मिलकर काम करने की ज़रूरत है ताकि स्थानीय पंचायत स्थानीय सभी बच्चों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्यचर्या की सुविधाएं जुटा सकें।

प्रारंभिक शिक्षा

अगर मानव संसाधन विभाग अथवा पंचायत को उन बच्चों की सही संख्या की जानकरी हो जिन्हें पूर्व प्रारंभिक शिक्षा दी जानी है तो यह तय करना उनके लिए मुश्किल नहीं होगा कि उनके इलाक़े में कितने प्राथमिक स्कूलों की ज़रूरत है या किस गांव में कितने स्कूल होने चाहिए अथवा उपलब्ध स्कूलों के अलावा और कितनी शिक्षण संस्थाओं की ज़रूरत है। लेकिन यहां पर ध्यान देने की बात है कि हमें उन मानकों और सुविधाओं को भी ध्यान में रखना है जो हर स्कूल में होनी चाहिए और जो हर कक्षा के बच्चों को मिलनी चाहिए। ध्यान देना होगा कि ऐसी परिस्थिति में

कितने स्कूलों/शिक्षकों की ज़रूरत है, कितनी सुनियोजित कक्षाएं होनी चाहिए आदि। यह काफी नहीं होगा कि एक ही बड़ा हाल उपलब्ध हो जिसे काल्पनिक लाइनें खींचकर हर कक्षा के लिए विभाजित कर दिया जाए और उसमें सचमुच ही कोई न तो लाइनें हो अथवा पर्दे लगे हों। हर कक्षा के लिए हमें अलग से क्लासरूम बनाना होगा। यह बड़े शर्म की बात है कि 21वीं सदी में भी हम भारत के स्कूलों में एक ही बड़े हाल में 3-4 कक्षाएं लगा रहे हैं जहां छात्रों और शिक्षकों की आवाज़ें गूंजती रहती हैं और जहां हर शिक्षक को अपने छात्र का ध्यान आकर्षित करने के लिए चिल्लाना पड़ता है। हमारे देश ने भले ही काफी प्रगति की है लेकिन पिछले 65 वर्षों से पढ़ने-पढ़ाने का यही तरीक़ा अपनाया है। क्लास के हर बच्चे के लिए शांत वातावरण में ध्यान केंद्रित करके पढ़ाई करना विलासिता की वस्तु हो गई है। क्या आधुनिक भारत में किसी भी बच्चे के लिए इस बुनियादी सुविधा की इच्छा करना विलासिता की मांग है?

भारत में निश्चय ही सर्वशिक्षा अभियान, जिला प्राइमरी शिक्षा कार्यक्रम, मध्याह्न भोजन व्यवस्था, शिक्षक शिक्षा योजना और कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जैसे कार्यक्रम अनेक राज्यों में चल रहे हैं। प्रारंभिक शिक्षा के स्कूलों में बच्चों की संख्या बेतहाशा बढ़ी है लेकिन इसके साथ पढ़ाई छोड़ जाने वाले बच्चों में भी वृद्धि हुई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन योजनाओं से हमारे देश की लाखों की संख्या में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के हक़दार बच्चों की ज़रूरतें पूरी हुई हैं। इस समय गांवों में एक से दो किमी के अंदर प्रारंभिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है। यह कोई मामूली उपलब्धि नहीं है। लेकिन ऐसे भी गांव हैं, जहां अब भी बच्चों को स्कूल तक पहुंचने में 3-4 किमी का रास्ता तय करना पड़ता है। शायद इस लेख में जिस प्रकार की स्वास्थचर्या और शिक्षा की ज़रूरतों की चर्चा की गई उससे पंचायतों, राज्य सरकारों और मानव संसाधन विभाग का ध्यान इस तरफ जाए और बच्चों की सही ज़रूरतों पर ध्यान दिया जाए।

शिक्षा की दिशा में किए गए प्रयासों का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1969 तक देशभर में 544 लाख लोअर प्राइमरी और 125 लाख अपर प्राइमरी बच्चों को स्कूली शिक्षा दी गई। वर्ष 2007 में इसी प्रकार के आंकड़े 1,354 लाख लोअर प्राइमरी और 567 लाख अपर प्राइमरी बच्चे थे।

भारत में वर्ष 2002 में जहां 6.64 लाख प्राथमिक स्कूल थे वहीं वर्ष 2005 में ये संख्या बढ़कर 7.6 लाख हो गई। अधिकांश बनाए गए भवनों में अलग-अलग कक्षाओं के लिए अलग कमरे हैं और प्रारंभिक शिक्षा पाने वाले बच्चों की संख्या 2002 की 169 मिलियन से बढ़कर 182 मिलियन हो गई। हालांकि ये वृद्धि उत्साहजनक है लेकिन अब भी समाज में लिंग भेद मौजूद है और प्राथमिक और प्राथमिक माध्यमिक स्तरों तक यह बिहार, राजस्थान, झारखंड, मध्य प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश में चिंता का विषय बना हुआ है। शिक्षा को किसी क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति से जोड़कर देखा जाता है अतः देश के अनेक भागों में बाल श्रम, बाल विवाह और माता-पिता में लड़कों को वरीयता देने की प्रवृत्ति मिलना आम बात है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में हर आर्थिक-सामाजिक समस्या को जिला स्तर पर निपटाया जाता है। भारत में कुल मिलाकर लगभग 650 जिले हैं

और हर जिले में लगभग 20 लाख लोग रहते हैं जो कुछ पश्चिमी देशों की कुल आबादी के बराबर है।

लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि देश बच्चों की बढ़ती हुई संख्या को शिक्षित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ संभव उपाय कर रहा है। बच्चों की बढ़ती हुई आबादी के लिए 5 चरणों में पूर्व प्रारंभिक और प्रारंभिक शिक्षा के लिए जरूरी मूल सुविधाएं जुटाई गई हैं:

- सार्वभौम उपलब्धता।
- सार्वभौम शिक्षा के लिए पंजीकरण।
- सार्वभौम स्कूल में पढ़ाई।
- सार्वभौम उपलब्धि एवं
- समता।

उपर्युक्त पांच चरण हर प्रकार की शिक्षा के लिए ज़रूरी हैं लेकिन ये पूर्व प्रारंभिक, प्रारंभिक और द्वितीयक शिक्षा के लिए बहुत ज़रूरी हैं। इन्हें लागू करके हमने स्कूल की पढ़ाई छोड़ जाने वाले बच्चों की संख्या कम करने में महत्वपूर्ण सफलता पाई है। 2001-02 में जहां 3.2 करोड़ बच्चें पढ़ाई छोड़ गए थे वहीं वर्ष 2005-06 में ये संख्या घटकर 70 लाख हो गई। वास्तव में यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है लेकिन हमें पढ़ाई छोड़ जाने वाले बच्चों की संख्या घटाकर शून्य करना है।

स्वतंत्र भारत के संविधान का एक लक्ष्य था सबको सार्वभौम, निशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो। तब से भले ही सरकारी और निजी स्कूलों की संख्या चार गुनी हो गई है और दोनों के प्रबंधन इस मामले में समान विचार रखते हैं कि बच्चों को पेयजल और शौचालय की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं लेकिन इसके कारण देश में एक विचित्र सी स्थिति बनी हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि माता-पिता और शिक्षक तथा स्थानीय पंचायतें और राज्य और केंद्र सरकारें कोई भी बच्चों की साफ़-सफ़ाई और स्वास्थ्य की चिंता नहीं करते। हमारे नियोजक और शिक्षा प्रबंधकों को इस समस्या पर ध्यान देना चाहिए।

कुछ भी हो हमें सूचना प्रौद्योगिकी पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। सरकारी और निजी स्कूलों में द्वितीयक कक्षाओं के लिए यह बहुत ज़रूरी है। आइए अब एक नज़र देश की द्वितीयक शिक्षा व्यवस्था (सेकेंडरी स्कूल सिस्टम) पर डालें।

द्वितीयक शिक्षा

भारत में द्वितीयक शिक्षा दो प्रकार की है: द्वितीयक (कक्षा 9 और 10) तथा उच्च द्वितीयक (कक्षा 11 और 12)। 1970 से पहले उच्च द्वितीयक कक्षाओं को कॉलेज एजूकेशन कहा जाता था। बाद में इन्हें उन हाईस्कूलों के सुपुर्द कर दिया गया जो छात्रों को मैट्रिक की फाइनल कक्षा (कक्षा 10) के लिए तैयार करते थे। कुछ लोगों के लिए यही कक्षाएं इंटरमीडिएट क्लासेस कही जाती थी यानी कॉलेज के पहले दो वर्ष। फिलहाल भारत के अनेक राज्यों में इंटरमीडिएट कक्षाएं हाईस्कूलों को स्थानांतरित कर दी गई हैं और इन्हें उच्च द्वितीयक स्कूल कहा जाता है। वर्तमान में दो प्रकार के स्कूल चलन में हैं: द्वितीयक और उच्च द्वितीयक। देखा गया है कि कुछ शिक्षा एजेंसियां उच्च द्वितीयक कक्षाएं लगाने की अनुमति प्राप्त कर लेती हैं और कुछ नहीं प्राप्त कर पातीं। इसी तरह से कुछ छात्र भी उच्च द्वितीयक में दाखिला नहीं पाते।

इस असुविधाजनक स्थिति से तब बचा जा सकता है जब सभी राज्यों में हाईस्कूल की शिक्षा 12 वर्षों की हो जैसाकि अमरीका और ब्रिटेन में चलन है। आलोचकों का कहना है कि भारत में कुछ प्राधिकरण इस व्यवस्था को निहित स्वार्थों के चलते बनाए रखना चाहते हैं। कुछ तो शिक्षा में भ्रष्टाचार की बातें करते हैं जोकि उनके अनुसार केजी स्तर से शुरू हो जाता है और ग्यारहवीं तक चलता है। सही बात यह है कि किसी बच्चे को स्कूली शिक्षा से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। पूर्व प्राथमिक कक्षा से द्वितीयक यानी 12वीं तक ये बात लागू होती है। अगर इसे अपना लिया जाए तो ये राष्ट्रीय नीति माता-पिता, शिक्षकों, प्रशासकों और अन्य सभी हितधारकों के लिए यह लाभदायक होगी।

किसी बच्चे के लिए दस वर्ष की शिक्षा पूरी करने से पहले स्कूल जाना बंद करके काम ढूंढ़ने की नौबत नहीं आनी चाहिए। दसवीं कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा न तो किसी नौकरी के उपयुक्त होता है और न ही काम पाने का गुण सीख पाता है। हर बच्चे को अपनी स्कूली शिक्षा 18 वर्ष तक ज़रूर पूरी कर लेनी चाहिए। 18 वर्ष की आयु दुनियाभर में महत्वपूर्ण मानी जाती है। जो बच्चे 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुके हैं उन्हें दुनिया के किसी देश में बच्चा नहीं समझा जाता। उसे मताधिकार का भी अधिकार मिल जाता है। मताधिकार का प्रयोग करने वाले को लोकतांत्रिक राजनीति के मूलभूत सिद्धांत मालूम होने चाहिए। उसमें नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरुकता भी होनी चाहिए। लेकिन उससे भी बढ़कर उस युवा में काम संभालने की योग्यता भी होनी चाहिए।

उच्च शिक्षा अनेक युवक-युवतियों के लिए इसलिए बेकार हो जाती है क्योंकि अकसर लड़कियों की शादी कर दी जाती है। यह बात दुनिया के अधिकांश देशों पर लागू होती है। अभी कुछ दिन पहले कुछ विवाहित और प्रौढ़ लड़कियों ने तमिलनाडु के कॉलेज में दाखिला लेकर अपनी शिक्षा पूरी करने की इच्छा जताई, लेकिन स्कूल के प्रधानाचार्य ने उन्हें दाखिला देने से मना कर दिया। इस बात को लेकर काफी हंगामा मचा जोकि तमिलनाडु तक ही सीमित नहीं रहा। भारत में अब भी बाल विवाह की प्रथा चलन में है। सामाजिक रूप से हम कह सकते हैं कि हम अब भी पिछड़े हुए हैं और पहले ज़माने से चली आ रही इस प्रथा से मुक्त नहीं हो पाए हैं। फिर भी हमारी शिक्षा व्यवस्था अनेक देशों के मुक़ाबले बेहतर है। यह एक प्रमुख विषय है जिस पर लंबी-चौड़ी चर्चा की जा सकती है लेकिन यह लेख उसके लिए उपयुक्त मंच नहीं है क्योंकि हमारा उद्देश्य वर्तमान रूप में उच्च द्वितीयक शिक्षा की परख करना है।

पहले पहुंच की बात करते हैं। हमारे देश में कुल मिलाकर 1,02,000 लाख स्कूल हैं और 40 हज़ार उच्च द्वितीयक स्कूलों में 370 लाख छात्र पढ़ते हैं। यह संख्या यूरोप के अनेक देशों की मिली-जुली जनसंख्या से अधिक है। उससे ज्यादा ताज्जुब की बात यह है कि उच्च द्वितीयक स्तर पर पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या 62 प्रतिशत है। इससे हमारे शिक्षा नियोजकों की आंखें खुल जानी चाहिए। बहुत से बच्चों के लिए उच्च द्वितीयक कक्षाओं तक पहुंच पाना बड़ी बात है। कॉलेज तक पहुंचना तो उनके लिए बहुत मुश्किल है। ज़रूरत इस बात की है कि हाईस्कूल तक शिक्षा का व्यवसायीकरण हो। इसके लिए नवीं से 12वीं कक्षा तक की शिक्षा का व्यवसायीकरण करना उपयुक्त रहेगा। हाईस्कूल पास छात्र 12 वर्षों

की शिक्षा पूरी करके सक्षम बनकर निकलेंगे और कई क्षेत्रों में उनमें व्यावहारिक कुशलता होगी। भारत एक विकासशील देश है और उसे अनेक क्षेत्रों में ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो व्यावसायिक काम जानते हों। ज़रूरत इस बात की है कि हाईस्कूल पास करने के बाद ये छात्र चार वर्ष का व्यावहारिक कुशलता का डिप्लोमा अर्जित करें और परंपरागत विषयों और भाषाओं की जानकारी भी प्राप्त करें।

जहां तक भाषाओं की जानकारी का सवाल है, हमें एक नयी राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करनी होगी। इस प्रसंग में पहले वाली त्रिभाषा नीति को और ज़ोर-शोर से चलाया जाना चाहिए साथ ही हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के साथ अंग्रेज़ी की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। साथ ही आस-पड़ोस के राज्यों की भाषा भी हिंदी-अंग्रेज़ी के साथ सिखाई जानी चाहिए। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में किसी भी छात्र को अंग्रेज़ी, मराठी, उड़िया, बांग्ला और तेलुगू की जानकारी दी जानी चाहिए जबकि तमिलनाडु में हिंदी और तेलुगू के अलावा उड़िया या मराठी भाषाएं सिखाई जानी चाहिए। आस-पास के राज्यों में भी यही नीति लागू होनी चाहिए। बचपन में कोई भी भाषा सीखना मुश्किल नहीं होता। यह एक ऐसा विषय है जिस पर विचार-विमर्श होना चाहिए। हम स्कूली शिक्षा की बात करेंगे, जहां भाषा, शिक्षा के साथ किसी छात्र को तकनीकी विषयों की भी जानकारी दी जानी चाहिए। अगर ये छात्र इंजीनियरिंग अथवा टेक्नोलॉजी से परिचित रहेंगे, तो उन्हें देश के किसी भाग में काम पाने में आसानी होगी।

तकनीकी विषयों के साथ ही छात्रों को नागरिकशास्त्र, सार्वजनिक मामलों के व्यावहारिक तथा नैतिक सिद्धांतों, सार्वजनिक सेवा, नीतिशास्त्र और उत्तरदायित्व निभाने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। हाईस्कूल पास छात्र अच्छे नागरिक बन सकते हैं। उनमें कंप्यूटर चलाने की क्षमता भी होनी चाहिए, क्योंकि देश की भावी प्रगति कंप्यूटर आधारित डिजिटल टेक्नोलॉजी पर ही निर्भर करेगी।

वर्ष 2004-05 में द्वितीयक स्तर पर 1.42 मिलियन लड़कों और 101 लाख लड़कियों ने और हॉयर सेकेंडरी स्तर पर 12.7 मिलियन लड़कों तथा 5.3 मिलियन लड़कियों ने दाखिला लिया। उम्मीद की जाती है कि आगामी वर्षों में पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या घटेगी और 11वीं तथा 12वीं योजनाओं में अधिक सुविधाएं जुटाई जाने के साथ इनमें और कमी आएगी।

अगर निम्न दो मुद्दो पर ध्यान दिया जाए, तो देश में द्वितीयक शिक्षा का भविष्य और उज्ज्वल हो सकता है, वे हैं:

- 6 से 18 वर्ष तक की आयु वाले बच्चे के लिए 12 वर्ष की स्कूली शिक्षा। अंतिम चार वर्षों में उन्हें व्यावसायिक विषय पढ़ाए जाएं ताकि भारत के हर प्रदेश में हर बच्चा एक जिम्मेदार नागरिक बनें जिनमें काम करने की योग्यता हो और इस तरह से वे अच्छा जीवनयापन कर सकें।
- देशभर में सभी स्कूलों में पक्के भवन एवं सुसज्जित कक्षाएं हों जिनमें आधुनिक उपकरण उपलब्ध हों ताकि सभी बच्चों को संचार प्रौद्योगिकी की जानकारी पाने का अवसर मिले और वे दिन-प्रतिदिन के काम में आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर सकें।

स्कूलों में आईसीटी की सुविधा देने से काफी प्रगति हुई है। लेकिन अब भी इस दिशा में काफी काम बाक़ी है।

इस समय 1.4 लाख सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त द्वितीयक स्कूलों में आईसीटी सुविधाएं उपलब्ध हैं। लेकिन अब देश को अधिक संख्या में प्रशिक्षित अध्यापकों और सुसज्जित स्कूलों की ज़रूरत है। इनमें से अधिकांश ऐसे होंगे जहां इंटरनेट की सुविधाएं भी उपलब्ध होंगी। लेकिन देश के दूर-दराज इलाक़े में 28 हज़ार ऐसे स्कूल हैं जहां आधुनिक सुविधाओं की ज़रूरत है। कई स्कूल सेटलाइट सर्किट पर तो हैं और वहां के छात्र विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में नये-नये कार्यक्रम देख पाते हैं। उम्मीद की जाती है कि 12वीं योजना के दौरान ज्यादा स्कूलों में आईसीटी सुविधाएं और उपग्रह के कनेक्शन उपलब्ध हो जाएंगे। वर्तमान में जो क़दम उठाए जा रहे हैं उनसे बालिकाओं की शिक्षा में सुधार आएगा और उनमें सामाजिक असमानता घटेगी, सहशिक्षा का प्रचार होगा और शिक्षक प्रशिक्षण आदि क्षेत्र में बेहतरी आएगी, जिससे द्वितीयक शिक्षा को और दुरुस्त बनाया जा सकेगा।

इस तरह से द्वितीयक शिक्षा में जो भी सुधार आएगा उससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा और विश्वविद्यालयीय स्तरों पर अनुसंधान हो सकेंगे और इस प्रकार से शिक्षा के तृतीयक स्तर की गुणवत्ता सुधरेगी।

तृतीयक स्तर की बेहतरी

जैसा कि इस लेख के शुरू में चर्चा की गई है देश के अनेक भागों में 1857 में आधुनिक उच्च शिक्षा की शुरुआत तब हुई जब उसी साल लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज़ पर 3 विश्वविद्यालय खोले गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में दो दर्जन विश्वविद्यालय और 500 कॉलेज थे जिनमें सरकारी और निजी दोनों शामिल हैं। लेकिन वर्तमान में कॉलेजों की संख्या 30 हज़ार से ज्यादा हो गई है। इसी तरह से 600 से ज्यादा विश्वविद्यालय और मानित विश्वविद्यालय हैं जिनमें 15 लाख छात्र उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इस प्रकार से भारत दुनिया के सबसे ज्यादा छात्रों वाले देशों में शामिल है। इनमें से कुछ छात्र दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत पढ़ रहे हैं। कुल छात्रों की संख्या में तकनीकी, इंजीनियरिंग और चिकित्सा के छात्र शामिल हैं लेकिन अधिकांश विद्यार्थी कला, व्यापार, कॉमर्स और विज्ञान कॉलेजों में हैं। अधिकांश उच्च संस्थानों में शिक्षण अनुसंधान और विस्तार की शिक्षा दी जाती है।

शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार विश्वविद्यालय व्यवस्था ने भारत में अनेक उत्कृष्ट विद्वान, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, इंजीनियर, डॉक्टर और राजनेता पैदा किए हैं। लेकिन ऐसे भी विद्वानों की संख्या कम नहीं है जो इस बात की आलोचना करते हैं कि भारत के अधिकांश कॉलेज शिक्षा की दुकानें हैं और वे विभिन्न परीक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करने वाले कोचिंग संस्थानों से ज्यादा हैसियत नहीं रखते। किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त डिग्री हासिल कर लेना मुश्किल नहीं है। अनेक छात्र सिर्फ़ इसलिए उच्च शिक्षा संस्थानों में जाते हैं क्योंकि उनके पास करने को कुछ नहीं होता अथवा नौकरी देने वाले विश्वविद्यालय/कॉलेज की डिग्रियां मांगते हैं। दूसरे शब्दों में, रोज़गार को डिग्रियों से अलग नहीं किया जा सकता या यों कहें कि कॉलेज डिग्रियां एव नौकरी पाने का साधन बन गई हैं। भारत जैसे उच्च साक्षर देश में बस संवाहक, दफ्तरों में बाबू अथवा निचली श्रेणी वाले

कर्मचारी भी स्नातकोत्तर डिग्रीधारक हैं। उनमें से कई लोगों के पास पीएचडी की डिग्री भी है। इन लोगों के पास उच्च शिक्षा की डिग्रियां क्यों होनी चाहिए? वे जो काम करते हैं, उन्हें कोई हाईस्कूल पास व्यक्ति कर सकता है। इस लेखक का वास्ता एक बार लगभग आधे दर्जन उन परास्नातकों से पड़ा जो सफाईकर्मी के साक्षात्कार में शामिल होने के लिए आए थें। इन लोगों ने इस काम के लिए इसलिए आवदेन किया क्योंकि नौकरी पाने के लिए बहुत प्रतिस्पर्धा है और बेकारी बढ़ी हुई है। उनका विश्वास है कि साक्षात्कार के समय उनकी स्नातकोत्तर की डिग्री उन्हें प्राथमिकता दिलाएगी। भारत में उच्च शिक्षा के संदर्भ में यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

कॉलेज और विश्वविद्यालयों को उन लोगों को आकर्षित करना चाहिए जो उच्च शिक्षा और ज्ञान की तलाश में होते हैं और सचमुच मन से अध्ययन करना चाहते हैं। विश्वविद्यालयों को डिग्री उत्पादक संगठन नहीं बनना चाहिए। परास्नातक और स्नातक की डिग्रियों को नौकरियों से अलग करने की ज़रूरत है क्योंकि ऐसा करके ही विश्वविद्यालयों की शिक्षा की गुणवत्ता बेहतर बनाई जा सकती है।

इन सब के बावजूद भारत में शिक्षा व्यवस्था का बहुत विस्तार हो रहा है और उसमें उछाल आया है। हमने पहले ही संकेत दिया है कि 1947 से लेकर आज तक हर क्षेत्र में समग्र विकास हुआ है। यूजीसी और एआईसीटीई, आईएमसी आदि ने जो क़दम उठाएं हैं और एनसीईआरटी, सीबीएसई जैसी संस्थाओं ने जो प्रयास किए हैं, उनसे निजी शिक्षण संस्थान और प्रबंधन दीर्घ अवधि में भारत को एक ज्ञान समाज बनाने में ज़रूर सफल होंगे। इस तरह से वैश्विक समाज में भारत शिक्षा का एक आकर्षक गंतव्य स्थल बन सकेगा।

आइये! हम इस लेख का समापन तीन दशक पहले यूनेस्को द्वारा किए गए निम्नलिखित कथन के साथ करें:

''शिक्षा दृष्टिकोण विस्तृत करने और कौशल बढ़ाने की वह सुनियोजित प्रक्रिया है जो स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय विकास के लिए ज़रूरी है। सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक तथा राजनीतिक बदलाव सभी देशों के लिए और खासतौर से उन विकासशील देशों के लिए बहुत ज़रूरी हैं जो अपनी जनता के हर वर्ग की मूल आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए आमूल-चूल परिवर्तन लाने को प्रयत्नशील हैं।'

अत: हम सब का यह प्रयास होना चाहिए कि पिछले 65 वर्षों में भारत ने शिक्षा के सभी क्षेत्रों में जो सराहनीय विकास किया है उसे हम आगामी वर्षों में और आगे बढ़ाएंगे। ❑

(लेखक पूर्व कुलाधिपति (केरल-1992-96) और संचार तथा पत्रकारिता विभाग के प्रभागाध्यक्ष (1982-92) रहे हैं। 1996 से 2007 तक वे भारत और अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में यूसीजी प्रोफेसर इमेरिट्स और विजिटिंग स्कॉलर रहे हैं।

ई-मेल : vilanilam.jv@gmail.com)

ENGLISH by Mrs. Annie

FOR UPSC, PCS, SSC, PO, CPF, CPO etc.

DICTION
ENGLISH INSTITUE
202, 3rd Floor, A-40/41, Ansal Building
(above HDFC Bank), Dr. Mukherjee Nagar,
Delhi- 9 Phone:- **011 65883933**

New Batch starts from:
21-07-12

YH-87/2012

भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम प्रगति पर

● राधाकृष्ण राव

नवंबर 1963 में भारत ने तिरुवनंतपुरम् के उपनगर थुंबा स्थित विषुवतीय रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र (टीईआरएलएस) से रॉकेट छोड़ा और ऐसा करते हुए अंतरिक्ष में एक छोटा क़दम बढ़ाया। अब यह कार्यक्रम अंतरिक्ष अनुसंधान की दिशा में तेज़ी से बढ़ने की स्थिति में आ गया है। यह बात उसकी खगोलीय अनुसंधान संबंधी सोची-समझी योजनाओं और अंतरिक्ष में मानव सहित मिशन भेजने के कार्यक्रमों से ज़ाहिर होती है। भारत ने 2008 में अपना पहला चंद्रयान-1 मिशन सफलतापूर्वक भेजा। इसके ज़रिये उसने वे सारे तकनीकी उद्देश्य पूरे कर लिए जो निर्धारित किए गए थे। तब से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने विशेषज्ञता हासिल कर ली है और अन्य देशों से आगे रहते हुए गहन अंतरिक्ष में विचरण करने का आत्मविश्वास विकसित किया है। लेकिन इसके साथ ही, इसरो का कहना है कि भले ही हमारी नज़रें नक्षत्रों पर हों, लेकिन हमारे पैर मज़बूती से धरती पर ज़मे हुए हैं। इसरो द्वारा इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि हम आधुनिक अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल मानव विकास के लिए कर रहे हैं। हम अंतरिक्ष में आधुनिक अनुसंधान के ज़रिये जो प्रौद्योगिकी विकसित करते हैं उसे समाज के हित में सामाजिक समस्याओं के समाधान ढूंढने में लगाते हैं और ऐसा करते हुए सभी तरह से भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम प्रगति के पथ पर है। वर्तमान स्थिति के अनुसार व्यापक रूप से माने जाने वाले दो सामाजिक लाभ इसरो के कार्यक्रम से ज़ाहिर होते हैं 1. ग्राम संसाधन केंद्र और 2. दूर-चिकित्सा कार्यक्रम। ये दोनों कार्यक्रम हमारे संचार के काम आने वाले इन्सैट उपग्रह की क्षमताओं पर आधारित हैं। इसरो ने इसके साथ ही उपग्रह प्रेक्षण केंद्र भी कार्यान्वित किए हैं जो इन उपग्रहों की सहायता करते हैं। इन्सैट और आईआरएस दोनों प्रणाली दुनियाभर में किसी भी उपग्रह व्यवस्था के लिए सबसे बड़ी प्रणाली मानी जाती हैं। साथ ही, हम उस जनादेश का भी ध्यान रखते हैं जिसके अनुसार हमारा अंतरिक्ष कार्यक्रम शांतिपूर्ण अनुप्रयोगों के लिए और आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए समर्पित है। इसरो ने हमेशा ही वाह्य अंतरिक्ष को हथियारों की होड़ से मुक्त रखने की बात कही है। इसरो के लिए ये बिल्कुल स्पष्ट है कि वाह्य अंतरिक्ष मानवमात्र की विरासत है और इसे भविष्य में भी युद्ध क्षेत्र नहीं बनाया जाना चाहिए।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम से सुपरिचित विश्लेषक इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं कि इसरो के कार्यक्रमों का मौजूदा ज़ोर खगोलीय मिशनों और भारत के आर्थिक और तकनीकी महाशक्ति के रूप में उभरने के साथ ही मानव सहित उड़ानों पर होना चाहिए। लेकिन साथ ही इसरो ने ये स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रणेता डॉ. विक्रम साराभाई ने इस संबंध में जो दृष्टिकोण अपनाया था उसे कमज़ोर नहीं किया जाना चाहिए। अब से कई दशक पहले डॉ. साराभाई ने कहा था कि ''ऐसे भी कुछ लोग मौजूद हैं जो विकासशील देश में अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों की प्रासंगिकता पर सवाल उठाते हैं। हमारे लिए उद्देश्य में कोई अस्पष्टता नहीं है। हम आर्थिक रूप से उन्नत देशों के साथ चंद्रमा या अन्य ग्रहों या मानव सहित अंतरराष्ट्रीय उड़ानों की खोजयात्रा के साथ प्रतियोगिता की कल्पना नहीं कर रहे हैं। लेकिन हमें पूरा विश्वास है कि यदि हमें राष्ट्रीय तौर पर और राष्ट्रों के समुदाय के बीच सार्थक भूमिका निभानी है, तो हमें मनुष्य और समाज की वास्तविक समस्याओं के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी लागू करने में किसी से पीछे नहीं रहना चाहिए।''

भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की एक और अद्भुत विशेषता है कि इसने कम बजट के बावजूद सफलता और आत्मनिर्भरता हासिल की है। वस्तुतः शून्य से शुरू करके इसरो आज एक जबर्दस्त संगठन बन गया है और तरह-तरह के कार्यक्रम चला रहा है। इनमें संचार और प्रसारण, मौसम की जानकारी, धरती का प्रेक्षण और वैज्ञानिक अनुसंधान की योजनाएं शामिल हैं। तकनीक न देने की बाधा के बावजूद इसरो ने अपनी स्वयं की महत्वपूर्ण और जटिल व्यवस्था अपने ही प्रयासों से विकसित कर ली है। भू-राजनीतिक मज़बूरियों के चलते इसरो भारत के संपूर्ण विकास में योगदान नहीं कर पाया और आईआरएनएसएस जैसी योजनाओं पर काम नहीं कर सका। ज़ाहिर है कि अगर यह योजना चलाई जाती तो देश को जीपीएस नवस्टार जैसे वैश्विक तंत्र पर निर्भर रहने की ज़रूरत न पड़ती। स्पष्ट है कि आईआरएनएसएस देश की प्रगति में सहायक होता। यह तंत्र सात उपग्रहों से बनता है और उम्मीद की जा रही है कि इस दशक के मध्य तक यह पूरी तरह से काम करने लगेगा।

इसरो एक अन्य जिस चुनौती का सामना कर रहा है वो है भारतीय अंतरिक्ष यात्रियों के लिए एक स्पेस सूट विकसित करना और इस दिशा में प्रौद्योगिकी और अनुसंधान में प्रगति। इसके लिए काम शुरू कर दिया गया है और भविष्य में जिन अंतरिक्ष यात्रियों को भारत से अंतरिक्ष में भेजा जा सकता है उसमें 2016 के बाद भारतीय की भागीदारी बढ़ जाएगी। इस उद्देश्य से इसरो ने बंगलुरु मुख्यालय वाली डिफेंस बायो इंजीनियरिंग एवं इलेक्ट्रो मेडिकल लेबोरेटरी के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं जिसके अंतर्गत ऐसा स्पेस सूट डिज़ाइन और विकसित किया जाएगा जिस पर अभी तक तकनीकी रूप से कुछ विकसित देशों का एकाधिकार बना हुआ है। इस काम में यह प्रयोगशाला कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञ सेवाएं देगी जिनमें जीवन सहायता तंत्र, तकनीकी वस्त्र और सामग्री उपलब्ध

कराना शामिल है।

इसरो एक स्वायत्तशासी चालक यान भी विकसित करेगा जिसमें लाइफ सपोर्ट सिस्टम लगा होगा और जो किसी एक व्यक्ति को अंतरिक्ष में ले जाने में सक्षम होगा। इससे मानव सहित अंतरिक्ष उड़ान का सपना पूरा हो सकेगा। इस अभियान के एक भाग के रूप में इसरो सतीश धवन स्पेस सेंटर में तीसरा लांच पैड विकसित कर रहा है। यह वही केंद्र है जहां से भारत के अनुसंधान मिशन छोड़े जाते हैं और जो देश के पूर्वी तट स्थित श्रीहरिकोटा द्वीप पर बनाया गया है। उड़ान औषधि संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ एविएशन मेडिसिन) के साथ भी इसरो ने समझौता किया है जिसके ज़रिये अगले साल यानी 2013 तक बंगलुरु में एक अंतरिक्ष यात्रियों का प्रेक्षण खोलने की योजना है। अमरीका, रूस और चीन के बाद चौथे देश भारत द्वारा मानव सहित मिशन भेजने की योजनाएं तभी सफल हो पाएंगी। 1984 में राकेश शर्मा भारत के पहले अंतरिक्ष यात्री तब बने थे जब उन्होंने रूस के सोयूज टी-11 अंतरिक्ष यान पर उड़ान भरी थी।

इन सभी साधनों के ज़रिये इस दिशा में वर्ष 2012 बहुत महत्वपूर्ण साल बन जाएगा। क्योंकि यह वर्ष भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए घटनामय होगा। चार चरणों वाले भरोसेमंद पोलर सेटेलाइट प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी) के ज़रिये भारत का पहला माइक्रोवेब अर्थ ऑब्जरवेशन सेटेलाइट रीसैट-1 26 अप्रैल को छोड़ा गया। यह इसरो के लिए एक बड़ी तकनीकी सफलता है। कारण यह कि अभी तक सिर्फ़ गिने-चुने देशों ने ये क्षमता विकसित की है जिसके ज़रिये अंधेरा, धुंधलापन अथवा धूल के बादल होने के बावजूद निर्बाध तरीक़े से आंकड़े भेजे और ग्रहण किए जा सकेंगे। इसरो ने जो दूरसंवेदी उपग्रह छोड़े हैं वे दिन की चमकदार परिस्थितियों में भी काम कर पाते हैं।

रीसैट-1 ऐसा उपग्रह है जो भारत की धरती से छोड़ा गया सबसे भारी उपग्रह है। पीएसएलवी ने लगातार 20वीं उड़ान पूरी की है। रीसैट-1 का महत्व इस बात में है कि वो इसरो के सघन अनुसंधान और विकास कार्यक्रम का परिणाम है और अब भारत अपने ही संसाधनों के फोटो के लिए किसी विदेशी इमेजिंग सेटेलाइट पर निर्भर नही है। रीसैट-1 के सी-बैंड सिंथेटिक अपरचर रडार से जो आंकड़े प्राप्त होंगे उनका इस्तेमाल खेती और आपदा प्रबंधन में किया जाएगा। खासतौर से रीसैट-1 से मिले आंकड़े खरीफ़ की फ़सल के प्रंबधन में बहुत उपयोगी होंगे जब आसमान में बादल घिरे रहते हैं। वस्तुत: खड़ी फ़सलों के बारे में जो आंकड़े रीसैट-1 ने उपलब्ध कराए हैं वे खरीफ़ की फ़सलों के लिए बहुत उपयोगी साबित हुए हैं और योजनाकार इन पर निर्भर रहते हुए भरोसेमंद तरीक़े से अनाज की पैदावार संबंधी पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि इसरो ने यह प्राप्त की है कि वह इसी वर्ष की तीसरी तिमाही के दौरान छोड़े जाने वाली पीएसएलवी मिशन की ओर आशाभरी निगाहों से देख रहा है। इस पीएसएलवी उड़ान के ज़रिये 800 किलोग्राम वजन वाला स्पॉट-6 फ्रेंच भूप्रेक्षण उपग्रह भेजा जाएगा और इसके साथ ही जापान का एक 15 किलोग्राम भार वाला स्पेस प्रोब पे लोड होगा। इस मिशन के लिए इसरो ने चार चरणों वाले पीएसएलवी रॉकेट छोड़ने की योजना बनाई है इसमें आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले पहले चरण के समय में इस्तेमाल होने वाले 6 स्ट्रैप वाले बूस्टर लगे होंगे। यह पीएसएलवी मिशन भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की व्यापार शाखा एंट्रिक्स कॉरपोरेशन, बंगलुरु द्वारा हस्ताक्षर किए गए एक समझौते के अंतर्गत छोड़ा जाएगा। यह समझौता एंट्रिक्स और यूरोप की कंपनी एस्ट्रियम एसएएस के बीच हुआ है। हालांकि यह नहीं बताया गया कि इस मिशन के लिए कितने पैसे वसूले गए हैं, लेकिन एंट्रिक्स द्वारा प्राप्त किए जाने वाला ये आर्डर काफी लाभप्रद होगा और पीएसएलवी लांच सर्विस के लिए काफी ज्यादा राजस्व अर्जक अनुबंध होगा।

इससे पहले कि 2012 वर्ष खत्म हो, इसरो तीन चरणों वाला जियोसिंक्रोनस सेटेलाइट प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी) भी छोड़ेगा जिसमें स्वदेश में ही बनाया गए क्रायोजेनिक इंजन का इस्तेमाल होगा। 400 टन से कुछ ज्यादा वजन वाले इस जीएसएलवी रॉकेट की विशेषता ये होगी कि ये भारत को 2.5 टन वर्ग वाले इनसैट संचार उपग्रहों के प्रेक्षण में आत्मनिर्भर बनाएगा। अन्य इनसैट वर्ग के अधिकांश उपग्रह जो इस समय इसरो के इस्तेमाल में हैं, एरियन प्रक्षेपण यान की मदद से छोड़े गए थे। एरियन स्पेस नाम की ये कंपनी भारत को सेवाएं दे रहीं थी। अब जैसे ही भारत के जीएसएलवी संचालन योग्य हो जाएंगे, एंट्रिक्स विदेशी ग्राहकों को ये सेवाएं प्रदान करने लगेगा जिनके ज़रिये भारी संचार वर्ग वाले अंतरिक्ष यान छोड़े जा सकेंगे।

इसरो जीएसएलवी का एक और उन्नत संस्करण भी तैयार कर रहा है जिसका नाम जीएसएलवी मार्क-3 होगा। इसके चालू दशक के मध्य तक तैयार हो जाने की उम्मीद है और इसके ज़रिये भू-स्थानिक कक्षा में चार टन वर्ग वाले उपग्रह प्रेक्षित किए जा सकेंगे। 629 टन वाले 3 चरणों के जीएसएलवी मार्क-3 की खास बात यह होगी कि इसमें क्रायोजनिक इंजन लगा होगा और ऐसा प्रोपेलेंट होगा जो 25 टन तक वजन उठा सकेगा। इसरो एक ऐसे सेमी क्रायोजेनिक इंजन पर भी काम कर रहा है जो 2000-केएन तक की ताक़त पैदा कर सकेगा। इसमें तरल ऑक्सीजन और मिट्टी के तेल जैसे ईंधन इस्तेमाल होंगे।

इसरो ने लागत में क़िफायत की अपनी एक दीर्घावधि योजना बनाई है। इस योजना के तहत इसरो ने बार-बार इस्तेमाल हो सकने वाले अंतरिक्ष परिवहन तंत्र पर काम शुरू किया है। यह तंत्र एयर ब्रीथिंग प्रौद्योगिकी पर आधारित होगा। इसमें एयर ब्रीथिंग के ज़रिये अंतरिक्ष यान पर मौजूद ईंधन जलेगा जिससे उसे आगे बढ़ने की ताक़त मिलेगी। इस यान में परंपरागत रूप से इस्तेमाल होने वाले रासायनिक ईंधन का इस्तेमाल नहीं होगा।

अभी तक एंट्रिक्स ने पीएसएलवी का इस्तेमाल करते हुए 27 उपग्रह प्रक्षेपित किए हैं। ये विभिन्न ग्राहक देशों के सेटेलाइट थे जिनमें अल्जीरिया, इटली, इजराइल, लक्जमबर्ग, बेल्ज़ियम, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इंडोनेशिया, कनाडा, सिंगापुर और दक्षिण कोरिया प्रमुख हैं। ज़ाहिर है कि एंट्रिक्स को उम्मीद है कि अगले पांच वर्षों के दौरान प्रक्षेपण सेवाओं में विस्तार होगा और उसके राजस्व में हर साल 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी होगी। पीएसएलवी की ख़ास बात ये है कि यह मल्टीमिशन और मल्टी पे लोड योग्यता वाला सिंगल लांच रॉकेट है। इसने अपनी ताक़त दिखाते हुए अप्रैल 2008 में एक बार में ही दस उपग्रह स्थापित किए थे।

जहां तक उपग्रह प्रौद्योगिकी का संबंध है इस संगठन ने यूरोपीयन कंपनी ईएडीएस ऐस्ट्रियम के साथ सहयोग करते हुए अपने ग्राहकों को डब्ल्यू2एम और हैलास सेटेलाइट उपलब्ध कराए हैं। इस संगठन ने दुनियाभर में

इस क्षेत्र में एक प्रमुख खिलाड़ी की भूमिका निभाने की योजना बनाई है और ग्राहकों की ज़रूरत के मुताबिक उपग्रह तैयार करने की योजनाएं बनाई हैं। एंट्रिक्स ने उपग्रह ऑपरेटरों के लिए अनेक प्रस्ताव तैयार किए हैं और उपयोगी सिद्ध हो चुके सेटेलाइट प्लेटफॉर्मों के आधार पर उपग्रह उपलब्ध कराने की व्यवस्था की है। वर्तमान स्थिति के अनुसार इसरो लगातार अपने तक़नीकी आधार को समयानुकूल बनाने के प्रयास करता रहा है और तद्नुसार भविष्य में काम आने वाले अंतरिक्ष तंत्रों का डिज़ाइन विकसित किया गया है। इसरो के अध्यक्ष के. राधाकृष्णन ने बताया कि अगले पांच वर्षों के दौरान इसरो 10,000 वाट क्षमता वाला संचार उपग्रह तैयार करेगा जिसमें 60 से 70 तक ट्रांसपोंडर लगाए जा सकेंगे। इस उपग्रह में उच्च फ्रीक्वेंसी वाले बैंड ट्रांसपोंड होंगे।

एंट्रिक्स का एक और कार्यक्षेत्र वैश्विक संसाधनों के आंकड़ों के वितरण से संबंधित हैं। ये आंकड़े भारत के आईआरएस उपग्रहों द्वारा इकठ्ठे किए जाते हैं। निकट भविष्य में एंट्रिक्स ने इन अंतरराष्ट्रीय आंकड़ों के संबंधी मूल सुविधाओं को सुदृढ़ करने की योजनाएं बनाई हैं। इससे अंतरराष्ट्रीय आंकड़ों की बिक्री और व्यापार विकास में सहायता मिलेगी।

इस विश्लेषण का अंतिम निष्कर्ष ये होगा कि एंट्रिक्स का मुख्य ज़ोर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम से जुड़े हुए उत्पादों और सेवाओं के उपयोग और आगे बढ़ाने पर है। खासतौर से एंट्रिक्स उपतंत्रों और उपग्रहों के कलपुर्जों का विपणन करता है, उपग्रह उपभोक्ताओं के विनिर्देशों संबंधी ठेके लेता है, प्रक्षेपण सेवाएं उपलब्ध कराता है और इससे जुड़ी अन्य सेवाएं देता है। एंट्रिक्स के ग्राहकों में दुनिया की कई बड़ी कंपनियां शामिल हैं इनमें ईएडीएस ऐस्ट्रियम, इंटेलसैट, अंवति ग्रुप, इनमरसैट, वर्ल्डसैट, कारी (कोरिया एयरोस्पेस रिसर्च इंस्टीट्यूट), यूटेलसैट, ओबीए सिस्टम और यूरोप, मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के अनेक अंतरिक्ष संगठन शामिल हैं। एंट्रिक्स की विकास योजनाएं नये क्षेत्रों में विकसित हो रहे व्यापार पर आधारित हैं तथा इस उद्देश्य से सेवाओं और उत्पादों की संख्या बढ़ाई जा रही है।

वस्तुतः एंट्रिक्स भारतीय उद्योगों की सहायता से कई अरब डॉलर का अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष बाज़ार हथियाने की प्रतियोगिता में शामिल है। इस समय भारत की लगभग 500 औद्योगिक यूनिटें भारत के अंतरिक्ष के कार्यक्रम में हार्डवेयर, तंत्र और सेवाएं देकर हाथ बंटा रही हैं।

लेकिन बार-बार भेजे जा रहे अंतरिक्ष मिशनों की बढ़ती संख्या के परिप्रेक्ष्य में इसरो संचार उपग्रहों और पीएसएलवी के उत्पादन के लिए भारतीय उद्योगों की ओर देख रहा है। इस काम में भारतीय उद्योगों को शामिल करने के पीछे उद्देश्य ये है कि इसरो के अनुसंधानकर्ताओं और इंजीनियरों को अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित करने योग्य बनाया जाए ताकि ऐसी तकनीकों का विकास किए जा सके जो अगली पीढ़ी के उपग्रहों के काम आएं। यह दृष्टिकोण अपनाने से इसरो सेटेलाइट निर्माण और प्रेक्षण वाहनों के निर्माण की अनर्थक कवायद से छुटकारा पा सकेगा। राधाकृष्णन ने कहा कि हम इस संभावना का पता लगाना चाहते हैं कि क्या पीएसएलवी और संचार उपग्रह उद्योगों से बनवाए जा सकते हैं।

एक और मोर्चे पर इसरो का योगदान सराहनीय है। अपनी दूरदृष्टि 2025 रणनीति के एक भाग के रूप में इसरो ने मंगल, शुक्र और अन्य खगोलीय क्षेत्रों के अन्वेषण की योजनाएं बनाई हैं। अगर सब कुछ योजना अनुसार चलता है तो भारत का मंगल अन्वेषक इस लाल उपग्रह तक जाने वाला पहला भारतीय मिशन होगा। इसे अगले साल किसी वक़्त भेजे जाने की योजना है। इस उपग्रह को पीएसएलवी के ज़रिये भेजा जाएगा जो चंद्रयान-1 में भी इस्तेमाल किया गया था। मंगल अन्वेषक का वैज्ञानिक उद्देश्य ये होगा कि वहां जीवन की संभावना, जलवायु, भू-रचना, मौलिक रचना, विकास और जिंदा रहने की संभावनाओं के बारे में अनुसंधान किया जाए। इसरो एक और योजना आदित्य पर भी काम कर रहा है। यह एक लघु अनुसंधान उपग्रह है जिसका उद्देश्य सूरज के अंतिम घेरे का अध्ययन करना है। आदित्य भारत का पहला अंतरिक्ष आधारित सौर अनुसंधान अन्वेषण होगा और इसे भी पीएसएलवी के ज़रिये प्रक्षेपित किया जाएगा। एक और उपग्रह जो प्रक्षेपण किए जाने के लिए तैयार है, वो एस्ट्रोसैट है। ये भारत का पहला नक्षत्र विज्ञान को समर्पित उपग्रह है। इसके ज़रिये ग्रहों और अन्य सौर किरणों की वेबलेंथ का प्रेक्षण किया जाएगा।

लेकिन इन सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम है भारत का चंद्रयान-2। ये चंद्रयान-1 का अगला क़दम होगा। इसे जीएसएलवी के सहारे प्रक्षेपित किया जाएगा और यह चंद्रमा की कक्षा में चक्कर लगाएगा और वहां उतरेगा। इसरो ने चंद्रयान-2 में रखी जाने वाली सामग्री को अंतिम रूप दे दिया है और इसके उद्देश्य तय कर लिए हैं। उम्मीद है कि चंद्रमा का ये मिशन चंद्रमा के उद्भव और विकास को समझने में सहायक बनेगा और इससे प्राप्त आंकड़े इस अध्ययन में सहायता देंगे। चंद्रयान-2 वर्ष 2014 में प्रक्षेपित किए जाने की योजना है।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग के ज़रिये जानकारी और संसाधनों का आदान-प्रदान किया जा रहा है और यही भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की विशेषता है। इसरो लगातार अन्य अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रमों से सहयोग कर रहा है और इसके ज़रिये नयी-नयी चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसा करते हुए वह अपनी अंतरिक्ष नीतियों को संशोधित करता है और उन उद्देश्यों को परिभाषित करता है जो उसे पूरे करने हैं। अंतरिक्ष कार्यक्रम वाले देशों के साथ तकनीकी सहयोग के ज़रिये इस सहयोग की सीमा बहुत व्यापक हो गई है। और इसके ज़रिये इसरो सभी उपलब्ध अवसरों का प्रभावी उपयोग करता है।

उक्त विचारधारा के अनुसार मई 2012 के दौरान दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल की अपनी यात्रा के समय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने दक्षिण कोरिया विश्वविद्यालय के छात्रों को उनके द्वारा तैयार किए गए नैनो उपग्रह को प्रक्षेपित करने की सुविधा देने का प्रस्ताव किया था। ये जानना रोचक होगा कि कुछ समय पहले 1999 में पीएसएलवी के ज़रिये दक्षिण कोरिया का किटसैट-3 उपग्रह व्यापारिक शर्तों पर छोड़ा गया था। उसके बाद 2009 में डॉ. मनमोहन सिंह ने दक्षिण पूर्व एशिया में प्राकृतिक आपदाओं पर नज़र रखने और भारतीय रिमोट सेंसिंग उपग्रहों के ज़रिये प्राप्त आंकड़े देने का प्रस्ताव किया था। प्रधानमंत्री ने दक्षिण पूर्व एशियाई देशों द्वारा निर्मित छोटे उपग्रह छोड़ने का भी प्रस्ताव किया था। ऐसी परिस्थितियों में आश्चर्य नहीं होगा कि भारत का अंतरिक्ष सहयोग बाहरी अंतरिक्ष जितना ही व्यापक हो जाएगा। ❑

(लेखक बंगलुरु स्थित स्वतंत्र पत्रकार हैं।

ई-मेल : rkrao1950@gmail.com)

हिन्दी माध्यम का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

निर्माण IAS

Give the best ... Take the best

by कमल देव (K.D.) सफलता का पर्याय

नया दौर, नई चुनौती..... नई रणनीति

Q I P

गुणवत्ता सुधार कार्य
After PT Result

▶ सामान्य अध्ययन

▶ इतिहास

डॉ. सतेन्द्र (Rank 166)

निर्माण टीम K.D. सर के निर्देशन में अभ्यर्थियों के चयन के लिए प्रोफेशनल संबंधों से आगे बढ़कर मित्रवत् और उत्प्रेरक मार्गदर्शन दे रही है।

अपनी सफलता हेतु मैं निर्माण टीम की मेहनत का आभारी हूँ।

Neeraj Kumar Singh	11	Dileep Kr. Rathore	662
Sanjeev Kumar	58	Afsar Ali	667
Praveen Singh	107	Prabhakar Prabhat	673
Praveen Laxkar	116	Shama Praveen	685
Pratibha Pal	160	Raghuvees S. Charah	687
Shiv Raj Dayal	271	Amit Goyal	778
Devesh Kumar	335	Dileep Kr. Shukla	780
Yogendra Singh	483	Ashwini Kr. Pandey	805
Balram Meena	540	Sukhbir S. Badhel	819
Hemraj	598	Vijay Singh	847
Yamuna Prasad	599	Jitendra Meena	854
Abhishek Jain	607	Chetna Meena	857
Devanand Yadav	608	Kavita Meena	865
Saket Ranjan	635	Kripa Shankar	883
Avanish	659	Ajeet Kumar	895

HEAD OFFICE 12, Mall Road, Hudson Lane, Kingsway Camp, Delhi-9

CLASS ROOM 624, IInd Floor, Mukherjee Nagar (Near Aggarwal Sweet) Delhi-9

पत्राचार कार्यक्रम उपलब्ध (9990765484)

Website:- www.nirmanias.com

Ph. : 011-47058219, 9990765484, 9891327521

YH-84/2012

भारत में संचार क्रांति का असर

● अरविंद कुमार सिंह

आधुनिक युग में किसी भी देश के आर्थिक विकास का परिचायक वहां की संचार व्यवस्था को माना जाता है। आधारभूत ढांचे में संचार क्षेत्र सबसे अहम माना जा रहा है। संचार क्षेत्र में कमजोरियों के नाते भारत समेत दुनिया के तमाम देश विकास की दौड़ में औरों से पीछे रह गए थे। लेकिन बीते कई सालों से भारत में संचार क्रांति एक नया अध्याय लिख रही है। इसी के साथ सूचना और संचार क्षेत्र दोनों में क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिल रहे हैं और इसके कुछ इंगित ख़तरों के साथ सफलता की कई कहानियां भी सामने आ रही हैं। इस लेख में हम मुख्य रूप से दूरसंचार और डाक क्षेत्र में बीते साढ़े छह दशक की उपलब्धियों की चर्चा करेंगे।

भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) के ताज़ा आंकड़ों के मुताबिक देश में मई 2012 तक देश में मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या बढ़कर 93.93 करोड़ के आसपास हो गई है। इसी तरह हमारा टेली घनत्व बढ़कर 79.28 फीसदी तक पहुंच गया है। इस क्षेत्र में हुए विकास की इससे तुलना की जा सकती है कि आज़ादी मिलने के साल सन् 1947 में भारत में टेलीफोनों की संख्या महज 80 हज़ार थी और टेलीघनत्व केवल 0.02 फ़ीसदी था। पर बीते कुछ सालों से हर महीने के आंकड़ों में उछाल देखने को मिल रहा है। हालांकि सक्रिय मोबाइल फोनों के आंकड़ों को लेकर ट्राई की ओर से भी कुछ सवाल उठे हैं। फिर भी अब तक जो तस्वीर सामने आई है वह बहुत सुनहरी है।

दरअसल, आज़ादी के बाद भारत में दूरसंचार के क्षेत्र में ज़मीनी आधार सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र ने ही तैयार किया। निजी क्षेत्र ने उदारीकरण के बाद खासतौर पर मोबाइल क्षेत्र में खास योगदान किया। बीते कुछ सालों से तो निजी कंपनियों के ग्राहकों की संख्या में इस तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है कि सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों बीएसएनएल और एमटीएनएल के वजूद को ही गंभीर चुनौती मिलने लगी है। फिर भी इनका ग्रामीण भारत में संचार क्रांति में अहम योगदान है जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

वैसे तो दुनियाभर में संचार क्रांति नया अध्याय लिख रही है और इसके बहुत सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं। लेकिन भारत में दूरसंचार क्षेत्र में चमत्कारिक प्रगति हुई है। सारे लक्ष्यों और कयासों को ध्वस्त करते हुए दूरसंचार क्षेत्र ने बहुत ऊंची विकास दर दर्ज़ की है और कई कीर्तिमान बनाए हैं। कई विवादों के पैदा होने के बावजूद इस क्षेत्र में विकास की गति मद्धिम नहीं हुई है। हम बुनियादी ढांचा क्षेत्र में भी काफी प्रगति कर रहे हैं लेकिन संचार क्षेत्र सबसे तेज़ी से प्रगति कर रहा है और अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका निभा रहा है। उम्मीद जतायी जा रही है कि संचार क्रांति का अगला कदम देहात के उन लोगों को सेवित करेगा जो अभी भी तमाम सुविधाओं से वंचित हैं।

आज़ादी मिलने के साल भारत में लगे कुल करीब 80 हज़ार टेलीफोनों में ज्यादातर सरकारी दफ़्तरों या राजा-महाराजा, सेठ-साहूकारों आदि के यहां लगे थे। उस दौरान भारत में लगे कुल फोनों से ज्यादा संख्या अकेले सिडनी शहर में थी। वह स्थिर फोनों का ही ज़माना था और बहुत भाग्यशाली लोग फोन लगवा सकते थे। आज़ादी के बाद सरकार के 34 साल के नियोजित प्रयासों के बाद भी हमारे फोनों की कुल संख्या 20.5 लाख तक हो पाई थी।

लेकिन हाल के वर्षों में हम नया अध्याय लिख रहे हैं और दुनिया के कई महत्वपूर्ण देशों के समकक्ष खड़े हो गए हैं। लेकिन यह ध्यान रखने की बात है बीते दशक़ों में संचार क्रांति ने खासतौर पर शहरी इलाक़ों पर विशेष ध्यान दिया। ग्रामीण इलाकों में भी दूरसंचार क्रांति की दस्तक हाल के सालों में हुई है और ग्रामीण टेली घनत्व बढ़कर 38 से ज्यादा हो गया है, जबकि शहरी 168 के करीब। शहरों की तुलना में गांवों में कम टेली घनत्व की कई वजहें हैं। वैसे तो कम प्रतिव्यक्ति आय, बिजली-सड़क की दिक्क़त, कम साक्षरता दर और ग्रामीण आबादी के सामाजिक-आर्थिक स्तर में कमी को इसका कारण माना जाता है, लेकिन एक बड़ा कारण गांवों में निजी कंपनियों का जाने से कतराना भी रहा है।

देश की प्रस्तावित राष्ट्रीय दूरसंचार नीति 2012 में मौजूदा ग्रामीण टेलीघनत्व को सन 2017 तक बढ़ाकर 70 और सन् 2020 तक 100 करने की परिकल्पना की गई है। यह

लक्ष्य भी रखा गया है कि सन् 2012 तक सभी गांवों तक सार्वजनिक फोन पहुंच जाएंगे और ब्राडबैंड कनेक्टिविटी हो जाएगी। ताज़ा आंकड़ों के मुताबिक देश के 97.8 फीसदी गांवों यानी 5,93,601 गांवों में से 5,80,556 गांवों तक ये सुविधाएं पहुंच गई हैं।

गांवों में मोबाइल और स्थिर फोनों के विकास में सरकार की पहल पर बनी सार्वभौमिक सेवा दायित्व निधि का खास योगदान रहा है। इसी निधि से अब तक बीएसएनएल ने 21,958 ग्रामीण टेलीफोन और रिलायंस ने 18,736 फोन लगवाए हैं। अभी इस निधि में करीब 22,000 करोड़ रुपये उपलब्ध हैं जिनमें गांवों में संचार क्रांति के इंतजाम करने हैं। दरअसल, सार्वभौमिक सेवा दायित्व निधि की स्थापना दुर्गम देहाती इलाक़ों में सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए 1 अप्रैल, 2002 से लागू की गई थी। इसकी परिधि में मोबाइल और ब्राडबैंड सेवा को शामिल करने के लिए नियमावली में हाल में ही संशोधन किया गया है। इसी तरह देश के उन 7,353 जगहों पर जहां मोबाइल फोन या लैंडलाइन कवरेज नहीं है वहां टावर लगाने के लिए नयी स्कीम शुरू की गई है और जल्दी ही यहां भी फोन पहुंच जाएंगे। इनमें अधिकतर इलाक़े उग्रवाद प्रभावित हैं।

लेकिन अगर बारीक़ी से देखा जाए तो पता चलता है कि देश में दूरसंचार ढांचे को आधार देने का काम दूरसंचार विभाग ने ही किया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम बीएसएनएल और एमटीएनएल का इसमें अहम योगदान रहा है। अभी भी बीएसएनएल में 3.57 लाख कर्मचारी हैं और इसे 2006 में मिनी रत्न श्रेणी-1 का सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम का दर्ज़ा मिल गया था। लेकिन कई तरह की चुनौतियों के कारण हाल के सालों में बीएसएनएल की माली हालत बिगड़ी है। फिर भी इसके पास बड़ा भारी नेटवर्क है और उसके पास टेलीफोन एक्सचेंजों की संख्या 37,623 है जिसमें एसटीडी/आईएसडी और इंटरनेट सेवाएं उपलब्ध हैं। मोबाइल क्षेत्र में बीएसएनएल ने अपनी सेवा देर से और अक्तूबर 2002 में शुरू की और दो साल के भीतर ही 596 में से 583 जिला मुख्यालयों समेत 3,483 शहरों और कस्बों को कवर कर लिया और जनवरी 2005 तक 87 लाख उपभोक्ताओं के साथ इसने करीब 22 फीसदी मोबाइल बाज़ार तक पहुंच बना ली। बीएसएनएल मोबाइल की भारी मांग रही और कई जगहों पर इसे प्रतीक्षा सूची भी बनानी पड़ी। ऐसा माना जा रहा है कि अगर बीएसएनएल ने मोबाइल सेवा निजी कंपनियों के साथ शुरू की होती तो आज वह उसकी स्थिति बहुत मज़बूत होती।

आज बीएसएनएल की बड़ी संरचना ग्रामीण इलाकों में फैली है जहां सेवाएं फायदेमंद नहीं हैं। खासतौर पर दुर्गम इलाक़ों में निजी ऑपरेटर जाने से कतराते हैं। इसलिए हाल में इसके ग्रामीण स्थिर फोनों को चालू रखने के लिए ट्राई ने सरकार से बीएसएनएल को 600 करोड़ रुपये की सहायता देने की सिफ़ारिश की है। दूरसंचार विभाग की विभिन्न इकाइयों के बीच पारस्परिक सहयोग के लिए मई 2011 में मंत्रालय ने एक समिति भी बनाई है।

मोबाइल क्रांति के साथ मोबाइल उपकरणों का भी बड़ा बाज़ार उभरा है और इससे रोज़गार की भी बड़ी संभावनाएं बनी हैं। वर्ष 2011 में देश में मोबाइल हैंडसेट की मांग में 20 फीसदी की बढ़ोतरी हुई। मूल्य के लिहाज़ से देखें तो सन् 2011 में यह मांग 38,200 करोड़ रुपये के बराबर थी, जबकि 2010 में 34,500 करोड़ रुपये के बराबर। इंडियन सेल्यूलर एसोसिएशन का आकलन है कि 2012 में मोबाइल उपकरणों का बाज़ार 43,000 करोड़ रुपये के बराबर होगा।

संचार क्रांति के साथ खासतौर पर मोबाइल क्षेत्र में निजी क्षेत्र का दायरा और दखल बढ़ता जा रहा है। इस समय मोबाइल क्षेत्र में निजी ऑपरेटरों की हिस्सेदारी 88.65 फीसदी हो गई है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम बीएसएनएल और एमटीएनएल की हिस्सेदारी केवल 11.35 प्रतिशत की है। सेवा प्रदाताओं द्वारा प्राप्त आंकड़ों के अनुसार मार्च 2012 के अंत तक 418.8 लाख उपभोक्ताओं ने विभिन्न सेवा प्रदाताओं के पास अपने मोबाइल नंबर की पोर्टिबिलिटी का अनुरोध दिया। केवल मार्च, 2012 के महीने में मोबाइल नंबर पोर्टिबिलिटी का अनुरोध करने वाले कुछ ग्राहकों की संख्या 47.6 लाख है। यह उपभोक्ताओं के लिए नया हथियार बन गया है और सेवा प्रदाता कंपनियों को अपनी सेवाएं बेहतर बनाने के लिए कोशिशें करनी पड़ी हैं। साथ ही विभिन्न कंपनियां अपने ग्राहकों को बचा कर रखने के लिए नयी स्कीमें और सुविधाएं दे रही हैं।

अगर अतीत के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि लंबे समय तक भारत में दूरसंचार क्षेत्र में प्रगति बहुत धीमी रही। सन् 1850 में कोलकाता और डायमंड हारबर के बीच में पहली प्रायोगिक टेलीग्राम लाइन शुरू हुई। वहीं भारत में पहला टेलीफोन एक्सचेंज 1882 में ओरियंटल टेलीफोन कंपनी ने लाइसेंस के आधार पर खोला था। तब कोलकाता, चेन्नई, मुंबई, रंगून और कराची टेलीफोन सेवा से जुड़ गए थे लेकिन उस समय इसके 300 से भी कम उपभोक्ता थे। तब सबसे ज्यादा 102 फोन कोलकाता और सबसे कम 11 फोन कराची में लगे थे। 1899-1900 तक आते-आते कुल 43 विभागीय एक्सचेंज खुल गए थे और 1921 तक हमारे पास 255 एक्सचेंज हो गए और टेलीफोनों की कुल संख्या बढ़कर 10,703 हो गयी। मार्च 1948 तक देश में केवल 537 पीसीओ और 320 टेलीफोन एक्सचेंज हो गए थे। उस समय फोन कितने महंगे और आम आदमी की पहुंच से दूर थे इसका अंदाज इससे लगाया जा सकता है कि 1920 में टेलीफोन किराया 120 रुपये था।

नियोजित विकास का असर

आज़ादी मिलने के बाद ही हमारी संचार सुविधाओं के विकास का नियोजित प्रयास शुरू हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू के निर्देशन में पहली पंचवर्षीय योजना में हर तालुका, थाना मुख्यालय तक पहुंचाने के साथ 5,000 से अधिक की आबादी पर टेलीफोन एक्सचेंज लगाने की योजना बनाई। आज़ादी के पहले आठ सालों में 15,000 नये फोन लगे। 1949-50 में पटना, आगरा, फिरोजपुर, लखनऊ, हापुड़ और बड़ौदा में लोकल फोन सेवा शुरू हुई तो बड़ी ख़बर बनी।

देश के पहले संचारमंत्री रफी अहमद किदवई ने संसाधनों की तंगी के बीच 1949-50 में अपना टेलीफोन योजना (ओन योर टेलीफोन) और अपना एक्सचेंज योजना (ओन योर एक्सचेंज) शुरू की। यह काफी लोकप्रिय हुई। इसी प्रकार देश में व्यापारिक संस्थाओं की मदद के लिए पहली बार टेलीफोन लोन योजना भी शुरू हुई जिसके तहत व्यापारिक संस्थाएं 20 साल तक की अवधि के लिए 50 हज़ार रुपये राशि का कर्ज़ महज ढाई प्रतिशत ब्याज पर ले सकती

थी। अपना टेलीफोन योजना के तहत 1950 से मार्च 1966 तक 94,074 टेलीफोन लगवाए और इससे सरकार के खाते में 22.41 करोड़ रुपये आए। इस तरह 1953-54 में भारत में फोनों की संख्या 2.20 लाख हो गई।

फोनों के विकास की गति दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी जारी रही और 1.83 लाख फोन लगे जबकि तीसरी पंचवर्षीय योजना में 3.96 लाख नये फोन लगे। 1968-69 तक फोनों की संख्या बढ़कर 11.20 लाख हुई और पीसीओ की संख्या 13,653 हुई। 1973-74 तक देश में फोनों की संख्या बढ़कर 16.4 लाख हो गई। लेकिन इनमें ज्यादातर फोन मुख्यतया शहरों तक ही सीमित थे और उस समय तक 5.32 लाख लोग फोन पाने के लिए प्रतीक्षा सूची में भी दर्ज़ थे। दिल्ली में 1979 में टेलीफोन उपभोक्ताओं पर किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया था कि 18.86 फीसदी उपभोक्ताओं को छोड़कर बाकी फोन प्रशासन, उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में काम कर रहे थे। अन्य उपभोक्ताओं में भी कई टेलीफोन रखने वाले सरकारी विभागों के अफसर और व्यावसायिक संस्थाओं के कर्मचारी थे। इनको वास्तव में घरों पर सरकारी फोन मिले हुए थे। इस तरह फोनों से आम आदमी के रिश्तों को आसानी से समझा जा सकता है।

संचार क्रांति में राजीव गांधी का प्रयास

इसके बाद प्रगति तो हुई लेकिन स्थिर फोनों की प्रगति की रफ़्तार बहुत धीमी या स्थिर ही रही। लेकिन राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद इस क्षेत्र में कई उल्लेखनीय काम हुए। सन् 1984 में सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ टेलीमेटिक्स (सी-डॉट) की स्थापना हुई और 1986 में महानगर टेलीफोन निगम और विदेश संचार निगम बना। उनके ही प्रयास से भारत में पहली बार मोबाइल टेलीफोन सेवा के बारे में भी विचार किया गया था। राजीव गांधी के प्रयास से 31 दिसंबर, 1985 को बहुत सीमित आधार पर दिल्ली में मोबाइल फोन सेवा शुरू की गई थी। लेकिन यह चुनिंदा लोगों की ही पहुंच तक थी।

तत्कालीन संचार मंत्री राम निवास मिर्धा ने तीस हज़ारी एक्सचेंज में जब इस सेवा की शुरुआत की तो यह महज 15 किलोमीटर के दायरे में ही काम कर रही थी। इसकी क्षमता कुल महज 450 कनेक्शनों की थी। ये मोबाइल टेलीफोन दरअसल कारफोन थे जो लोनी (गाजियाबाद) तक काम करते थे। जनवरी 1992 तक दिल्ली में ऐसे कुल 218 मोबाइल कार फोन लगे थे और इस प्रणाली पर 435 लाख रुपये की राशि ख़र्च की गई थी। बाद में संचार मंत्री रहे अर्जुन सिंह ने भी संचार सेवाओं को आम आदमी की परिधि में लाने का ताना-बाना बुना और उनके प्रयासों से कई अहम क़दम उठे।

उदारीकरण का असर

भारत की संचार क्रांति के इतिहास में 1991-92 के साल को एक अहम वर्ष माना जा सकता है जब मूल्यवर्धित सेवाएं निजी क्षेत्र के लिए खोली गई। इसी तरह 1994 में राष्ट्रीय दूरसंचार नीति की घोषणा के बाद 1995 में दूरसंचार सेवाएं संचालित करने के लिए निजी क्षेत्र को अनुमति मिल गई। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से मोबाइल, एसटीडी, आईएसडी, टेली कांफ्रेंसिंग और वायस मेल जैसी सेवाएं मजबूत स्थिति में पहुंचीं। भारत में दूरसंचार क्षेत्र में छलांग वास्तव में 1995 में मोबाइल और टेलीफोन क्षेत्र में निजी कंपनियों के प्रवेश के बाद आईं। 1995 से अगस्त 1996 के बीच करीब एक लाख 70 हज़ार लोगों के पास मोबाइल फोन पहुंच गए। हर महीने करीब 20,000 नये ग्राहक इसमें जुड़ रहे थे। लेकिन आगे 1999 में दूरसंचार नीति को और उदार तथा उपभोक्तान्मुखी बनाने के बाद काल दरें घटीं तो सन् 2000 के बाद फोनों की संख्या में बहुत तेजी आयी।

इसका असर यह रहा कि अकेले 2003-05 के बीच में भारत में 4.1 करोड़ नये टेलीफोन लग गए। अतीत के आंकड़ों से अगर इनकी तुलना करें तो ये किसी सपने जैसा ही लगते हैं। इसी के बाद मोबाइल आम आदमी की पहुंच में आने लगा जबकि पहले वह संपन्न लोगों के लिए विलासिता की वस्तु कहा जाता था। यही नहीं अक्तूबर 2004 तक मोबाइल फोनों ने स्थिर फोनों को संख्या बल में पीछे कर दिया। इसी नाते यह कहा जाता है कि दूरसंचार क्रांति दरअसल, मोबाइल क्रांति ही है। लेकिन यह कहना सही नहीं है क्योंकि संचार सुविधाओं ने समय के साथ अपनी भूमिका तय की है। देश के विकास में संचार के सभी साधनों का अपना महत्व रहा है। किसी को कमतर करके देखना उचित नहीं होगा। नयी प्रौद्योगिकी पुरानी को पीछे छोड़ती है या चुनौती देती है। मोबाइल क्रांति ने 2004 के बाद स्थिर फोनों को पीछे किया है और चिट्ठी-पत्री की दुनिया को भी प्रभावित किया है।

रोज़गार सृजन और पीसीओ की भूमिका

भारत में संचार क्रांति ने काफी संख्या में रोज़गार पैदा किए हैं। निजी कंपनियों के विस्तार से तो रोज़गार मिला ही, तमाम नये स्टोर और केंद्र खुलने से भी लाखों नौजवानों को रोज़गार मिली। इसी तरह पीसीओ से भी देश में बहुत से बेरोज़गार युवाओं को रोज़गार मिला और लोगों के दरवाज़े के पास तक संचार सुविधाएं पहुंची जो इनसे वंचित थे। संचार क्रांति जब लोगों के दरवाज़े तक पहुंच गई तो ये पीसीओ खासतौर पर शहरी इलाक़ों में संचार हाट की शक्ल में आ गए या फिर साइबर कैफे बन गए।

देश में 1990 तक कुल पीसीओ महज 78,500 थे जिनकी संख्या 2000 तक 6.28 लाख पहुंच गई। 1993 में एसटीडी पीसीओ में नीतिगत सुधार करते हुए इसे शिक्षित युवाओं के रोज़गार से जोड़ा गया और पीसीओ का विस्तार खासतौर पर सार्वजनिक क्षेत्रों में किया गया जैसे बस स्टेशन, टूरिस्ट सेंटर, एयरपोर्ट, रेलवे स्टेशन, धार्मिक स्थल, अस्पताल, शिक्षा संस्थान या पुस्तकालय आदि में। इसका असर यह हुआ कि अकेले दिल्ली में वर्ष 2002 तक एसटीडी/आईएसडी पीसीओ बढ़कर 23,134 हो गए। फरवरी 2003 तक बीएसएनएल के पीसीओ की संख्या बढ़कर 11,58,991 हो गई। यह संख्या अब बढ़कर 12.62 लाख हो गई है।

लैंड लाइन बनाम मोबाइल फोन

भारत में उदारीकृत व्यवस्था के बीच में संचार क्रांति का असली श्रीगणेश हुआ। पहले माना जाता था कि मोबाइल से संपन्नों की दुनिया का संचार होगा, पर इसके विपरीत दिशा स्थिर लाइनें यानी लैंड लाइन को कटवा कर लोग मोबाइल ले रहे हैं और जिस रफ़्तार से यह काम हो रहा है, वह दिन दूर नहीं जब लैंड लाइन सरकारी दफ़्तरों तक ही विराजमान रहे। वहां भी ई-प्रशासन का ज़ोर दिख रहा है।

संचार क्रांति बनाम डाकघर

भारत में संचार क्रांति में डाक विभाग

की भी अहम भूमिका रही है। कारण यह है कि डाक-तार विभाग 1985 तक एक ही संगठन का अंग रहे थे और डाक सेवाओं के फायदे से दूरसंचार का बहुत-सा ताना-बाना खड़ा हुआ। आज हमारे पास 1.55 लाख डाकघरों का विशाल नेटवर्क है जिसे दुनिया का सबसे बड़ा नेटवर्क माना जाता है। हमारे 89 फीसदी डाकघर ग्रामीण इलाक़ों में खोले गए हैं। आज़ादी के पहले कुछ प्रमुख रणनीतिक जगहों को छोड़ दें तो दुर्गम और जटिल इलाक़े डाक सेवा से वंचित थे। लेकिन 1947 में आज़ादी के बाद पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और पहले संचार मंत्री रफी अहमद किदवई के नेतृत्व में आम आदमी को केंद्र में रखकर संचार सुविधाओं को पहुंचाने के लिए जो रणनीति बनाई गई उसने भारतीय डाकघरों का चेहरा बदल दिया। आज़ादी के बाद नियोजित विकास के नाते भारतीय डाक नेटवर्क का विस्तार सात गुना हुआ। पर यह विस्तार केवल आकार में ही नहीं हुआ। भारतीय डाकघर आज दुनिया के सबसे बेहतरीन डाकघरों की श्रेणी में आ चुके हैं। भारत में 32.88 लाख वर्ग किमी के दायरे में 1.55 लाख डाकघर हैं, जबकि चीन में 95.95 लाख वर्ग कि.मी. के दायरे में 76,358 डाकघर। सबसे उन्नत अमरीका में 93.72 लाख वर्ग किमी पर 37,653 डाकघर हैं तो ब्राज़ील में 85.12 लाख वर्ग किमी क्षेत्र में मात्र 12,277 डाकघर हैं। इसी तरह अगर दुनिया के और देशों से भारत में प्रति डाकघर सेवित आबादी पर निगाह डालें तो भी भारत की स्थिति अमरीका, ब्राज़ील, द. अफ्रीका, चीन और मिश्र आदि से बेहतर है।

चीन तो भारत के भौगोलिक क्षेत्र से तीन गुना बड़ा है और उसकी आबादी भी हमसे ज्यादा है, पर हमारी डाक सेवाएं चीन से भी बेहतर हैं। अपनी व्यापक पहुंच के नाते भारतीय डाकघरों ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान, व्यापार, घरेलू अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक विकास में बेहद अहम भूमिका निभायी है। अतीत के मलेरियारोधी उपाय हो या परिवार नियोजन, लघु बचत हो या सैनिकों को पेंशन इन सबमें डाकघरों का अनूठा योगदान रहा है। हमारे डाकघर ही प्रशासन की अकेली ऐसी सबसे मज़बूत कड़ी हैं, सरकार में जिसकी सबसे ज्यादा गुडविल है और यही आम आदमी के सबसे करीब भी हैं। आज भी हमारे डाकघरों देश के हर कोने तक पहुंच है तथा इलाकाई ज़रूरतों को केंद्र में रखकर वे लोगों को सेवाएं दे रहे हैं। मनरेगा के श्रमिकों को मज़दूरी बांटने में भी इनका अहम योगदान रहा है।

आज़ादी के बाद लंबे समय तक परंपरागत सेवाओं में ही उलझे रहे भारतीय डाकघर आज बहुउपयोगी भूमिका में हैं। आम आदमी की पहुंच में वे बेहतरीन बैंक भी हैं और पासपोर्ट से लेकर संघ लोकसेवा आयोग के आवेदनों की बिक्री भी वहां से हो रही है। डाकघर मतदाता पहचान पत्र बनवाने और मतदाता सूचियों के संशोधन, रिटर्न जमा करने के केंद्र और बिजली पानी के बिल जमा कराने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। सभी डाकघर लेखन सामग्री तथा टिकट की बिक्री तो करते ही हैं, वे ग्राहकों को रिटेल सुविधा भी प्रदान करते हैं। आज़ादी मिलने के समय देशभर में कुल 57,321 लेटरबाक्स थे जिसमें से शहरी इलाक़ों में 17,310 और देहाती और कस्बाई इलाक़ों में 40,001। आज देश के 4,05,754 गांवों में लेटरबॉक्स के साथ डाक विभाग की मौजूदगी है। यही नहीं देश में लेटरबॉक्सों की संख्या 5,90,952 के रिकार्ड तक पहुंच गई है।

भारतीय डाक की शक्ति के तीन स्तंभ है। इस संस्था में लोगों का विश्वास, इसका नेटवर्क और मानव संसाधन। यह देश में एक प्रयोक्तानुकूल संगठन है और इसने यह विश्वास मैत्री सूचना के वितरण और अपने ग्राहकों को मनीआर्डर सेवा प्रदान करके अर्जित किया है। डाक विभाग दिलों को जोड़ने का काम करता है। प्रकृति से यह विस्तार पा रहा असाधारण संगठन है। हमारे डाकघरों की तस्वीर वास्तव में बीते छह दशकों से अधिक के योजनागत समर्थन के नाते ही बदल सकी है। एक ठोस स्थिति बन जाने के बाद डाक विभाग का सारा ज़ोर नेटवर्क को मज़बूत बनाने पर है। विस्तार पर पहले जैसा ज़ोर नहीं है। डाकघरों की माली हालत ठीक नहीं है और शहरी और देहाती इलाक़ों में चल रहे विभागीय डाकघरों में से करीब 57 फीसदी घाटे में ही चल रहे हैं। डाक यातायात में गिरावट आ रही है और संचार के वैकल्पिक साधनों का विकास तेज़ी से हो रहा है।

हाल के सालों में संचार क्रांति ने डाक विभाग के समक्ष काफी चुनौती खड़ी की है। इंटरनेट, फैक्स, ईमेल तथा एसटीडी कॉलों की दरों में कमी तथा मोबाइल क्रांति का सीधा प्रभाव डाक विभाग पर तो पड़ा ही है, कुरियर सेवाओं ने भी डाक कारोबार पर खासतौर पर शहरी इलाक़ों में बहुत प्रतिकूल असर डाला है। भारत में ग्रामीण डाकघरों को चलाने के लिए भारी-भरकम राजसहायता दी जाती है इसमें 96 फीसदी लागत तो इन डाकघरों की संस्थापना पर ही आती है। लेकिन ग्रामीण डाकघरों के सहारे बचत बैंक और बीमा योजना को और विस्तार देने के साथ दूरसंचार और इलेक्ट्रॉनिकी विभाग की मदद से और मजबूत आधार बनाने का प्रयास किया जा रहा है। देहाती जनमानस में ग्रामीण डाकघरों की खास विश्वसनीयता और स्वीकार्यता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसकी मौजूदा भूमिका इन क्षेत्रों में नयी सेवाओं को प्रदान करने में और सहायक बनेगी।

डाकघरों के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अप्रैल, 2008 में 'प्रॉजेक्ट ऐरो' की शुरुआत के साथ प्रारंभ हुई थी। इस परियोजना में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में डाकघरों की सेवाओं में सुधार की परिकल्पना की गई थी, जिसमें महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सेवा में सुधार और उसका दायरा बढ़ाने तथा उसके 'लुक एंड फील' सहित दोनों को ही बेहतर बनाने पर ज़ोर दिया गया। इस परियोजना का लक्ष्य डाकघरों के कर्मचारियों और वहां आने वाले ग्राहकों, दोनों के लिए विश्वस्त कनेक्टिविटी के माध्यम से सभी आईटी समर्थ सेवाएं मुहैया कराते हुए डाक पहुंचाने, इलेक्ट्रॉनिक और मैनुअल ढंग से रकम भेजने तथा डाक सेवाओं जैसे कारोबार के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सेवा की गुणवत्ता के स्तर में सुधार लाकर अनुकूल और मैत्रीपूर्ण माहौल तैयार करना है। 'लुक एंड फील' गतिविधि ब्रांडिंग, सूचना प्रौद्योगिकी, मानव संसाधन एवं अवसंरचना को बेहतर बनाने पर ध्यान केंद्रित करती है। ऐसी कई अहम योजनाएं चल रही हैं जिनके साकार होने पर डाक व्यवस्था में भी ज़मीनी बदलाव आने के साथ उसके और प्रभावी होने की संभावनाएं बन रही हैं। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं संचार और परिवहन मामलों के जानकार हैं।
ई-मेल : arvindksingh@email.com)

65 साल की आज़ादी में छुपे सवाल

● प्रियदर्शन

आज़ादी के 65 साल पूरे होने का जश्न हम किस तरह मनाएं? ज़ाहिर है, इस सवाल का वास्ता उन औपचारिक कार्यक्रमों से है जिसे हर साल आज़ादी के जलसे पर हम देखने के आदी रहे हैं। दरअसल, आज़ादी का जश्न मनाने से पहले यह समझना ज़रूरी है कि इस आज़ादी के वास्तविक मतलब हमारे लिए क्या हैं और एक राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष की हमारी जो परिकल्पना रही है, उसका स्वरूप क्या है, और वह किस हद तक पूरी हुई है।

इन सवालों के जवाब अक्सर दो तरह के नतीज़ों तक पहुंचाते हैं। एक तरफ यह अभियान दिखता है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद आज़ाद हुए देशों में शायद भारत अकेला है जिसने वैश्विक खेमेबाज़ी के कई जलते हुए दशकों के बीच अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाए रखी और संसदीय लोकतंत्र को ऐसी अपरिहार्यता दे डाली कि चाहे जिस भी रंग वाली विचारधाराएं हों, वे अपने ऊपर संसदीय लोकतंत्र का ठप्पा लगवाने के बाद ही हमारे देश में चल सकती हैं। ये एक ऐसी बड़ी उपलब्धि है जिसका ठीक से अंदाज़ा तभी लग सकता है, जब हम उस समय की अंदरूनी और बाहरी परिस्थितियों को समझें। यह याद करना ज़रूरी है कि तब भारत 200 साल की राजनीतिक गुलामी से उबरा था। देश ने एक बड़ी राजनीतिक लड़ाई लड़ी थी, लेकिन वह सूबों, सियासतों और जागीरों में बंटा हुआ था। इन सबसे बड़ी त्रासदी उस बंटवारे ने पैदा की थी जो अंततः याद दिला रहा था कि सारे राजनीतिक साम्य के बावजूद धर्म और जातियों के आधार पर बंटे रहने की ज़िद हममें कायम है।

इन सबके बीच हमने एक संविधान बनाया, जिसने सिर्फ़ समानता का सपना ही नहीं दिखाया, वह राह भी तैयार की जिसपर चलते हुए इस सपने को हासिल किया जा सकता था। दरअसल, इस देश का संविधान वह क्रांतिकारी दस्तावेज़ है जो सदियों की जड़ता के पार जाकर सामाजिक न्याय और राजनीतिक बराबरी का एक महास्वप्न रचा है। जो लोग कहते हैं कि हमने यह संविधान दुनियाभर से उधार लिया है, वह भूल जाते हैं कि बहुत दूर तक इस संविधान के शब्दों को भारतीय गणतंत्र ने जिया भी है। दरअसल, क़रीब सौ साल चले स्वाधीनता के संघर्ष के दौरान जो एक मूल्य चेतना विकसित हुई, वह इस संविधान की निर्मिति में भी दिखती है, भले ही उसके शब्द कहीं से लिए गए हों।

बहरहाल, अब यह याद करना कुछ अजीब लगता है कि कम से कम शुरू के दो दशकों तक दुनिया में कई ऐसे राजनीतिक विश्लेषक थे जो मानते थे कि भारत में न सिर्फ़ लोकतंत्र नाकाम रहेगा, बल्कि भारतीय राष्ट्र के राज्य भी बिखर कर रह जाएंगे। उनके पास अपनी बात के पक्ष में तरह-तरह की दलीलें हुआ करती थीं। वे याद दिलाते थे कि भारत में अंग्रेज़ों के आने से पहले कभी लोकतंत्र का प्रयोग नहीं रहा और राजा-रजवाड़े देर-सबेर लौटेंगे। वे देखते थे कि इस देश में इतनी सारी भाषाएं हैं कि सामान्य राजकाज भी मुश्किल है, राष्ट्रीय पारस्परिकता तो दूर की कौड़ी है। उन्हें लगता था कि भारत की निरक्षर जनता लोकतंत्र की उम्मीदों का बोझ संभालने में नाकाम होगी। लेकिन वे इसके भीतर की कई चीज़ें देख नहीं पाएं। जिसे भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'विविधता में एकता' का नाम दिया था, उस सांस्कृतिक अंतःप्रवाह पर इन चिंतकों की नज़र नहीं पड़ी जो उत्तर को दक्षिण से और पूरब को पश्चिम से जोड़ता था। इसके अलावा वे भारत की निरक्षर जनता को देख पाए लेकिन सदियों से चली आ रही उस परंपरा को नहीं देख पाए जो यहां के समाज में अपनी तरह की लोकतांत्रिकता और बहुलता पैदा करती रही थी।

लेकिन सत्तर का दशक आते-आते भारतीय राष्ट्र ने अपने आलोचकों को ग़लत साबित कर दिया, एक मज़बूत लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में दुनिया ने हमारा लोहा माना और यह अनिश्चितता जैसे हमेशा-हमेशा के लिए स्थगित हो गई जो भारत के संदर्भ में पश्चिमी चिंतकों का एक स्थायी शगल लगती थी।

राजनीतिक तौर पर हासिल इस मज़बूती के समानांतर वह सामाजिक उपलब्धि कतई छोटी नहीं है जो हमने इन वर्षों में हासिल कीं। सार्वजनिक व्यवहार में अस्पृश्यता बहुत दूर तक ख़त्म हुई और जातिवाद के बहुत सारे रूपों का खात्मा हुआ। एक दौर में अलग-अलग समुदायों के नाम से दिखने वाले भोजनालय अतीत की चीज़ हो चुके हैं और जातियों के बीच रोटी का रिश्ता आम है, हालांकि बेटी का रिश्ता जुड़ना अभी काफ़ी कुछ बाक़ी है (यह राम मनोहर लोहिया थे जो कहा करते थे कि भारत में जातिवाद रोटी और बेटी का नाता जोड़ने से ही जाएगा)। कुल मिलाकर सामाजिक बराबरी के मोर्चे पर एक बड़ी लड़ाई हमने जीती है।

कुछ ऐसी ही बात अपनी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में भी कही जा सकती है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद ग़रीब भारत के लिए संसाधन जुटाने की चुनौती काफ़ी बड़ी थी। खेती का हाल बुरा था। अंग्रेज़ परंपरागत उद्योग-धंधों का गला घोंट गए थे। कुछ बड़े कारखाने थे, लेकिन देश की ज़रूरत के लिए नाकाफ़ी थे। सरकार के पास इतने साधन नहीं थे कि वह अपने बूते पूरे देश का पुनर्निर्माण कर ले और न ही निजी पूंजीपतियों के पास इतने पैसे कि वे अपने ढंग से बुनियादी ढांचों का बोझ उठा सकें। इन सबके बीच हमने मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई, पंचवर्षीय योजनाएं बनाईं, शुरू के वर्षों में खेती पर और बाद में उद्योग पर फ़ोकस किया और अंततः धीरे-धीरे देश को कई मोर्चों पर आत्मनिर्भर बनाया। साठ के दशक से शुरू हुई हरित क्रांति ने अनाज के मामले में दूसरे देशों पर हमारी निर्भरता काफी कम कर दी, बाद के दौर में हुई श्वेत क्रांति ने दूध के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनाया। इसके बाद वह दौर भी आया जब मिश्रित अर्थव्यवस्था के पुराने मॉडल को छोड़कर उदारीकरण की नयी वैश्विक व्यवस्था स्वीकार की गई। इस व्यवस्था की अपनी आलोचनाएं कम नहीं हैं, लेकिन इसमें शक नहीं कि इन दो दशकों में इस नयी अर्थव्यवस्था ने देश को एक नयी छलांग लगाने में मदद की है।

लेकिन हमारा देश जितना बड़ा है, उसके लिहाज़ से देखें तो बीते पैंसठ सालों में हमने जितनी उपलब्धियां हासिल कीं, उनसे कहीं ज़्यादा चुनौतियां बची हुई हैं। बल्कि ऐसा कहा जाए कि जैसे हर मोर्चे पर उपलब्धियां और चुनौतियां हमक़दम हैं। एक तरफ संसदीय लोकतंत्र की अपरिहार्यता बढ़ी है तो दूसरी तरफ इस लोकतंत्र में जाति, पैसे और ताक़त का दबदबा बढ़ा है। विचारधाराओं के रंग जो भी हों, वे सब संसदीय लोकतंत्र के प्रति वफादारी का दम भरती हुई अपने लिए वैधता हासिल करती हैं और फिर इसी लोकतंत्र की मूल भावना पर चोट करती हैं। दरअसल, संसदीय लोकतंत्र अब उनके लिए एक परदा, एक पोशाकभर है जिसकी आड़ में वे अपनी राजनीति कर रहे हैं।

इसी तरह सामाजिक मोर्चे पर भी हमने बहुत सारी विषमताओं को समतल कर लिया, लेकिन यह समझना मुश्किल नहीं है कि समाज में दरारें बढ़ रही हैं। एक तरफ ऐतिहासिक तौर पर शोषण के शिकार तबके हैं जो धीरे-धीरे खड़े हो रहे हैं और पूरी आक्रामकता के साथ संसाधनों में अपना हिस्सा मांग रहे हैं और दूसरी तरफ वे लोग हैं जिनके पास फिलहाल सुविधाएं हैं। इन दोनों के बीच प्रतिभा, विशेष अवसर और आरक्षण जैसे संगीन सवालों पर चल रही तीखी बहस भी लगातार कई माध्यमों में दिखती है। लेकिन यह दिल तोड़ने वाली सच्चाई है कि आज़ादी के 65 साल बाद अपनी नागरिकता को लेकर, अपने लिए समान अवसरों की मांग को लेकर इतनी तीखी लड़ाई एक समाज को लड़नी पड़े।

इस सामाजिक विभाजन को वह आर्थिक विडंबना और बढ़ाती है जिसने एक भारत के लगभग दो हिस्से बना डाले हैं। एक तरफ चमचमाता हुआ इक्कीसवीं सदी का भारत है जिसके पास जैसे सब कुछ है और दूसरी तरफ वह भारत है जिसके पास से सब कुछ छीना जा रहा है। सारी कोशिशों के बावजूद हम बड़े पैमाने पर हो रहे आर्थिक-सामाजिक विस्थापन को रोकने में अक्षम हैं। महात्मा गांधी ने जिस ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना ही नहीं की थी एक तरह से उसका समग्र खाका भी खींचा था, अब उसका ख़्याल भी किसी को नहीं आता। सच यह है कि गांव ख़त्म हो रहे हैं तो शहर भी सड़ रहे हैं। गांवों में इतना सन्नाटा है कि रहना मुश्किल है और शहरों में इतनी भीड़ है कि वहां भी रहना मुश्किल।

जब ऐसी विषमताएं बढ़ती हैं तो अन्याय नयी शक्लों में फूटते हैं, आज़ादी भी धीरे-धीरे सीमित होती जाती हैं। क़रीब दो दशक पहले मशहूर कवि और संपादक रघुवीर सहाय ने एक अख़बार में अपनी नियमित कॉलम में लिखा था कि हमारी स्वतंत्रता में कई छिपी हुई परतंत्रताएं दाखिल हो रही हैं। आज दो दशक बाद वह हक़ीक़त कहीं ज़्यादा बड़ी लगती हैं। आज़ादी के 65 साल की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि हम अपने यहां सामाजिक अन्याय, गैर-बराबरी और इससे पैदा होने वाली गुलामी की परतों को पहचानें और उन्हें दूर करने के बारे में सोचें। ❑

(लेखक एनडीटीवी इंडिया **में वरिष्ठ समाचार संपादक हैं।**

ई-मेल : priyadarshan.parag@gmail.com)

इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र को 10 हज़ार करोड़ का प्रोत्साहन पैकेज़

देश में इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद और कंपोनेंट उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सरकार 10 हज़ार करोड़ रुपये का प्रोत्साहन पैकेज़ देगी। केंद्रीय केबिनेट की बैठक में यह फ़ैसला लिया गया। यह राशि केंद्र सरकार 12वीं योजना की अवधि (2012-17) में उपलब्ध कराएगी। आधिकारिक बयान में कहा गया है कि इस नीति से देश में इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के निर्माण का स्वदेशी वातावरण बनने की उम्मीद है। इस राशि से देश में पांच लाख लोगों को रोज़गार मिलने की उम्मीद है। नीति के तहत एसईजेड में पूंजीगत निवेश पर 20 फ़ीसदी और गैर एसईजेड में 25 फीसदी सब्सिडी दी जाएगी। यह प्रोत्साहन पैकेज़ इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम डिज़ाइन और विनिर्माण क्षेत्र की 29 श्रेणियों के लिए ही लागू है। इसके तहत टेलीकॉम, आईटी, कंज्यूमर इलेक्ट्रॉनिक्स, मेडिकल इलेक्ट्रॉनिक्स, ऑटोमोटिव इलेक्ट्रॉनिक्स, सोलर फोटोवोल्टिक, एलईडी, एलसीडी, एवियोनिक्स और इंडस्ट्रियल इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे क्षेत्र आते हैं। ❑

महादलित की विकासगाथा

● अनिल चमड़िया

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 26 जनवरी, 1950 को संविधान के तहत राज्य व्यवस्था को चलाए जाने की घोषणा से पूर्व संविधान के उद्देश्य और भारतीय समाज में दलितों और आदिवासियों के हालात के अंतर्विरोधों पर एक टिप्पणी की थी। उनके अनुसार, यह संविधान जहां देश के प्रत्येक नागरिक को एक समान अधिकार देता है वहीं भारतीय समाज में दलित और आदिवासी समेत पिछड़ी जातियां सदियों से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर गहरे असमानता का जीवन जी रहे हैं। भारत में अनुसूचित जातियों की कुल तादाद 15 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों की तादाद 7.5 प्रतिशत के आसपास आंकी जाती है। एक संवैधानिक (अनुसूचित जातियों) आदेश 1950 के अनुसार देश में अनुसूचित जातियों के समूह में कुल 1,108 जातियां और अनुसूचित जनजातियों में 744 समूहों की पहचान की गई थी। अंग्रेज़ों ने 1935 में जब भारत की सरकार अधिनियम, 1935 बनाया तब पहली बार दबी-कुचली जातियों के लिए 'शिड्यल कास्ट' और 'ट्राइब्स' शब्द का प्रचलन शुरू हुआ। भारतीय समाज में जिन जातियों को अस्पृश्य कहा जाता था उन्हें अंग्रेज़ों के जाने के बाद संबोधित करने के लिए राजनीतिक आयाम बदलते रहे हैं। अनुसूचित जातियों के लिए फिलहाल दलित शब्द प्रचलित है। गांधी जी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया था। हरिजन शब्द का इस्तेमाल 12वीं सदी में जाति व्यवस्था विरोधी आंदोलनकारी लेखिका गंगासती ने किया था। दलित का आशय पहले उन तमाम जातियों व समूहों से लगाया जाता था जो भारतीय समाज में एक औसत और सामान्य जीवन जीने से वंचित थे और उसमें भी आमतौर पर महिलाएं, पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों को शामिल किया जाता था। लेकिन राजनीतिक व्यवस्था में हर संघर्ष और प्रयास अपनी भाषा और प्रतीकों को स्थापित करता है। आज सरकारें दलित से महादलित की अवधारणा तक पहुंच चुकी हैं। इस तरह समानता के संघर्ष, सरकारी सुधार और वर्चस्ववादी सामाजिक संबोधन के बीच इस पूरे वर्ग की स्थितियों का आकलन किया जाना चाहिए।

संवैधानिक तौर पर असमानता के ख़िलाफ़ कई तरह की व्यवस्थाएं हैं। नौकरी और शिक्षा में आरक्षण का प्रावधान किया गया है तो प्रताड़ना के ख़िलाफ़ सख़्त कानून बनाए गए हैं। मकान देने से लेकर खेती के लिए ज़मीन देने तक के कार्यक्रम बनाए गए हैं। 1979 से विकास की हर योजना में इन वर्गों के लिए अलग से व्यवस्था की गई है। इन सभी तरह के प्रयासों के बीच यह भी दावा किया जा सकता है कि दलितों और आदिवासियों के बीच की एक छोटी-सी आबादी को नौकरियां मिली हैं, उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हुई हैं। लेकिन पैसठ वर्षों का लंबे समय और इनके कुल हालात का तुलनात्मक अध्ययन बताता है कि किसी समाज में संवैधानिक प्रावधानों का होना ही काफी नहीं है क्योंकि संवैधानिक प्रावधानों का महत्व तभी तक है जब वे ज़मीन पर उतरे और उन्हें अंतर्मन से पूरा समाज स्वीकार करे। क्योंकि किसी भी तरह की कानूनी व्यवस्था को समाज के लोग ही लागू कर व करवा सकते हैं। अगर इस दृष्टि से देखें तो मई 2012 में हरियाणा के हिसार के भागना गांव से दलित और पिछड़ी जातियों के 70 परिवारों को अपना गांव छोड़ना पड़ा और वे हिसार के जिला मुख्यालय से लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर पर भटक रहे हैं। इस तरह दलितों व पिछड़ों को गांवों को छोड़ने के लिए मज़बूर करने की घटनाएं हरियाणा में लगातार हो रही हैं। इससे ठीक पहले मिरचपुर से दलितों को गांव छोड़ना पड़ा था। आंध्र प्रदेश की श्रीकाकुलम जिले के लक्षिमपेटा गांव में 12 जून, 2012 को चार दलितों की हत्या कर दी गई और तीस से ज़्यादा लोग घायल हो गएं। यदि बिहार में दलितों पर भू-पतियों की सेना के हमलों के इतिहास पर नज़र डालें तो सोन नदी के किनारे दोनों तरफ के जिलों

में ये हमले सबसे ज़्यादा हुए हैं। यह इलाक़ा वैसा है जहां तीन-तीन फ़सलें तैयार हो जाती थीं। संपन्नता और समान वितरण के बीच गहरे असंतुलन से आक्रमकता ज़्यादा बढ़ी हैं। भारत के गांवों में ज़मीन पर अधिकार व दावे के कारण ही सबसे ज़्यादा हमले हो रहे हैं। इन हमलों में कई बार सरकारी व संवैधानिक मशीनरियों पर भी सवाल खड़े हो जाते हैं। वहीं शहरों में आरक्षण के प्रावधानों के लागू नहीं होने और सामाजिक तौर पर छुआछूत की भावनाओं के अवशेष के कारण दलितों व आदिवासियों की शिकायतें बढ़ी हैं। केंद्रीय विश्वविद्यालयों में दलितों व आदिवासियों के लिए आरक्षित शिक्षक के पचास प्रतिशत पद वर्षों से खाली पड़े हैं तो शिक्षण संस्थानों में आरक्षण के बावजूद दलितों व आदिवासी समाज के सदस्यों को दिल्ली के शिक्षण संस्थानों में दाखिला नहीं मिलने की शिकायत लगातार केंद्रीय मानव संसाधन मंत्रालय के समक्ष की जा रही है। ओड़िसा में शिक्षण संस्थानों में 3 अगस्त, 1992 से एक राजनेता बीजू पटनायक द्वारा 38 प्रतिशत आरक्षण देने के आदेश को लागू करने की मांग की जा रही है। तक़नीकी शिक्षण संस्थानों में दलित आदिवासी विद्यार्थियों की आत्महत्याओं की घटनाएं भी बढ़ी हैं। दरअसल, यहां कुछ उदाहरण इसीलिए दिए गए हैं ताकि दलितों व आदिवासियों के संघर्षों व उनके बीच विकास की आवश्यकता की प्रकृति को समझने में मदद मिल सके।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में जब राजकाज की शैली और उद्देश्यों में परिवर्तन होता है तो उसका समाज के कमज़ोर वर्गों पर सबसे ज़्यादा असर पड़ता है। भूमंडलीकरण की व्यवस्था के लागू होने के बाद जब से निजीकरण की प्रक्रिया तेज़ हुई है भारतीय समाज के कमज़ोर वर्गों के सामने नयी चुनौतियां खड़ी हुई है। सरकार के सामने भी यह चुनौती है कि वह इन नीतियों के बीच कमज़ोर वर्ग के सदस्यों के प्रति अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा करें। अब यह मांग की जाने लगी है कि न केवल नौकरियों में आरक्षण हो बल्कि तमाम तरह की सरकारी योजनाओं में कमज़ोर वर्गों की हिस्सेदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। निजी क्षेत्र की नौकरियों में भी आरक्षण की मांग की जा रही है। निजी क्षेत्र के शिक्षण संस्थानों में कमज़ोर वर्ग के सदस्यों के दाखिले व शिक्षण के दौरान आने वाले ख़र्चे में सरकारी हिस्सेदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। इस तरह उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि समाज में जो दबा-कुचला हिस्सा है उसे उसके हालात से कैसे ऊपर लाया जाए? इसके लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास करने की आवश्यकता है। जैसे जो धर्म का उपासक होगा वह दलितों को अपने धर्म से मुक्ति की राह दिखाएगा। जो सरकार चलाने वाले या सरकार में जाने की तैयारी करने वाली राजनीति होगी वह अपने तरीक़े से कमज़ोर वर्ग की स्थिति में सुधार के उपाय पेश करेगी। तमाम तरह के प्रयासों के बावजूद साठ वर्षों में कमज़ोर वर्ग के संबोधन से दलित और आदिवासी समूह का बड़ा हिस्सा अलग नहीं हो सका है। यहां तक कि तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद सर पर मैला ढोने जैसी व्यवस्था आज भी अनवरत जारी है। इस मुद्दे पर हाल ही में दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले प्रसिद्ध कार्यक्रम 'सत्यमेव जयते' में भी एक गंभीर परिचर्चा हुई थी। केवल दिल्ली जैसे शहर में पचास से ज़्यादा सफाईकर्मी सीवर साफ़ करने के दौरान अपनी जान गंवा देते हैं। इस तरह कोई भी एक क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां पर दलित व आदिवासी अपनी पुरानी स्थिति में मौजूद नहीं हैं का दावा हम कर सकें। राष्ट्रीय स्तर पर केंद्र सरकार द्वारा कराए जाने वाले सर्वेक्षणों के परिणामों से भी ज्ञात होता है कि दलितों व आदिवासियों की स्थिति में उम्मीद से बहुत कम एवं धीमी गति से सुधार हो रहा है। यह सुधार उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण पर भी लागू होती हैं। सबसे ज़्यादा खेत मज़दूर दलित और आदिवासी हैं लेकिन वे महात्मा गांधी राष्ट्रीय न्यूनतम रोज़गार गारंटी कानून के तहत चल रही योजनाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। खेती की मौजूदा स्थिति ने उनके हालात को और बदतर किया है। एक तरफ जो तस्वीर बनती है वह कई क्षेत्रों में विकास के दावे के बीच बड़े सवाल खड़े करती है। भारतीय समाज के दृष्टिकोण और विकास के शोर के बीच समाज के विभिन्न वर्गों की स्थिति एक गहरे अंतर्विरोध को प्रदर्शित करती है। डॉ. अंबेडकर ने पच्चीस जनवरी, 1950 को संविधान का प्रारूप तैयार होने के बाद जिस तरह की चुनौती की तरफ इशारा किया था वह अब भी अपनी बुनियाद में मौजूद है। ❑

(लेखक जन मीडिया **पत्रिका के संपादक एवं सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटी (सीएमडीएम) से संबद्ध हैं।**

ई-मेल : namwale@gmail.com)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– **संपादक**

संसदीय लोकतंत्र के 65 वर्ष

● देवेंद्र उपाध्याय

भारत विश्व के सातवें बड़े देश के रूप में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। आबादी की दृष्टि से विश्व में भारत का स्थान दूसरा है। भारत में 28 राज्य और सात केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी, दिल्ली, चंडीगढ़, दादरा एवं नगर हवेली, दमन एवं दीव तथा अंडमान एवं निकोबार लक्ष्यद्वीप समूह शामिल हैं। भारत राज्यों का संघ है जो संपूर्ण प्रभुतासंपन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है, जहां संसदीय प्रणाली की सरकार है। हमारी संसदीय सरकार के संविधान का ढांचा एकात्मक विशेषताओं के साथ संघात्मक भी है।

भारतीय संविधान में विधायी शक्तियां संसद एवं विधानसभाओं में विभाजित की गई हैं तथा शेष शक्तियां संसद को प्राप्त हैं। संविधान में संशोधन का अधिकार भी संसद को ही है। भारत में संघीय कार्यपालिका के अंतर्गत राष्ट्रपति, लोकसभा, राज्यसभा ये तीन मुख्य घटक होते हैं। जिसमें राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होती है, जो राष्ट्रपति को सलाह देती हैं। भारत का संसदीय लोकतंत्र देश की जनता की संप्रभु इच्छा का प्रतीक है और विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। भारतीय संसदीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विपरीत विचारधाराओं के होते हुए भी देश के विकास के मामले में किसी भी राष्ट्रीय संकट के समय उसे हल करने के मामले में सब एक हो जाते हैं। स्वतंत्रता के बाद ऐसे अनेक मौके आएं जब सबने एकजुटता प्रदर्शित की है। वास्तव में हमारी संसद राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

भारत को लंबे समय के संघर्ष और अहिंसक आंदोलन के बाद ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली। भारत की स्वतंत्रता ने विदेशी दासता के चंगुल में फंसे विश्व के अनेक देशों को अहिंसक मुक्ति संघर्ष के लिए प्रेरित करने के साथ उन्हें एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की प्रेरणा भी दी।

भारत की स्वतंत्रता के बाद 9 दिसंबर, 1946 को संविधान हॉल, जो आज संसद भवन का सेंट्रल हॉल है, में पहली बार संविधान सभा की बैठक हुई। इसके बाद संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत के संविधान को बनाने का काम शुरू किया। 15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतंत्रता के साथ एक नये स्वतंत्र संप्रभु राष्ट्र का उदय हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों ने भारत को सत्ता का हस्तांतरण कर दिया। इसने संविधान बनाने के काम को और अधिक आवश्यक बना दिया।

भारत की संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 माह और 18 दिन में 166 दिन अपनी बैठक की और 26 नवंबर, 1949 को संविधान को स्वीकार किया गया। उससे पहले संविधान सभा के सदस्यों ने संविधान के विभिन्न प्रावधानों पर हर पहलू को ध्यान में रखकर विस्तार से चर्चा की। 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतंत्र बन गया।

13 मई, 1952 को राज्य सभा (काउंसिल ऑफ स्टेट) और लोकसभा की पहली बैठक हुई। देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने डॉ. एस. राधाकृष्णन और एस.वी. कृष्णमूर्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 99 के अंतर्गत सदस्यों को सदन की सदस्यता की शपथ दिलाने का दायित्व सौंपा। राज्यसभा में शपथ लेने वालों में अनेक जाने-माने लोग शामिल थे जिनमें बिहार से रामधारी सिंह दिनकर एवं कामेश्वर सिंह, बंबई से आबिद अली, श्रीमती वायलट अल्वा, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, आर.आर. दिवाकर, श्रेयांस प्रसाद जैन, श्रीमती लीलावती मुंशी, मध्य प्रदेश से प्रो. रघुवीर, टी.एस. पट्टाभिरमण, प्रो. एन.डी. रंगा, के.एस. हेगड़े, सुरेंद्रनाथ द्विवेदी, पंजाब से दीवान चमन लाल, उत्तर प्रदेश से हृदयनाथ कुंजरू, बेगम ऐजाज रसूल, लालबहादुर शास्त्री, श्यामधर मिश्र, तारकेश्वर पांडे, पं. बंगाल से भूपेश गुप्त, हैदराबाद से एस. चन्ना रेड्डी, जम्मू-कश्मीर से बूटासिंह, राजस्थान से बरकतुल्ला खां, कालूलाल श्रीमाली, हरिश्चंद्र माथुर, सौराष्ट्र से सुखलाल हाथी, विंध्यप्रदेश से कैप्टन अवधेश प्रताप सिंह, बनारसी दास चतुर्वेदी एवं गुलशेर अहमद आदि प्रमुख थें। राष्ट्रपति ने जिन 10 विभूतियों को मनोनीत किया उनमें सत्येंद्र नाथ बोस, जे.एम. कुमारप्पा, डॉ. कालिदास नाग, काका साहेब कालेलकर, मैथलीशरण गुप्त, पृथ्वीराज कपूर, राधाकुमुद मुखर्जी, श्रीमती रुक्मिणी देवी, अरूंदले और प्रो. नारायणदास मल्कानी शामिल थे।

राज्यसभा का गठन 3 अप्रैल, 1952 को एक स्थायी निकाय के रूप में हुआ, जो कभी भंग नहीं होगी। एक सदस्य की सदस्यता अवधि 6 वर्ष की होगी। राज्यसभा सदस्यों की संख्या 250 से अधिक नहीं होगी जिसमें 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। राज्यसभा की वर्तमान सदस्य संख्या 245 है।

देश में 1951-52 में हुए पहले आम चुनाव के बाद पहली लोकसभा का गठन 17 अप्रैल, 1952 को हुआ तथा नवगठित लोकसभा की पहली बैठक 13 मई, 1952 को हुई। लोकसभा के सदस्यों की संख्या 552 होगी जिसमें अधिकतम दो सदस्य एंग्लो इंडियन समुदाय के होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति मनोनीत करेंगे। लोकसभा की वर्तमान सदस्य संख्या 545 है।

देश में पहली लोकसभा के लिए 25 अक्तूबर, 1951 से 21 फरवरी, 1952 तक आम चुनाव हुए। इस पहले आम चुनाव में 14 राष्ट्रीय दलों तथा 39 राज्यीय (क्षेत्रीय) दलों ने भाग लिया। सन् 1962 से पहले एकल सदस्यीय और बहुसदस्यीय क्षेत्रों में एक से अधिक सदस्यों का चुनाव होता था। सन् 1951-52 में 401 संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से 489 सीटों के लिए चुनाव हुए थे, जिनमें से 314 निर्वाचन क्षेत्र एक सीट वाले थे जबकि 86 तीन सीटों वाले थे। दो एंग्लो इंडियन सदस्यों के अलावा राष्ट्रपति ने आठ और व्यक्तियों के नाम निर्देशित किए थे। निर्देशित सदस्यों में असम तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के भाग-ख जनजातीय क्षेत्रों से प्रत्येक में से एक-एक सदस्य तथा जम्मू एवं कश्मीर राज्य से 6 सदस्यों के नाम निर्देशित किए गए।

पहली लोकसभा की पहली बैठक के लिए राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने जी. वी. मावलंकर तथा एम. अनंतशयनम अयंगर को सदस्यों को शपथ दिलाने के लिए नियुक्त किया। 15 मई, 1952 को श्री मावलंकर लोकसभा के पहले अध्यक्ष चुने गए। दूसरे एम. अनंतशयनम अयंगर 8 मार्च, 1956 को चुने गए।

संसद की प्रत्येक सभा का एक नेता होता है। प्रधानमंत्री यदि लोकसभा का सदस्य है तो वह सदन के नेता के रूप में कार्य करता है। यदि वह लोकसभा का सदस्य नहीं है तो वह एक ऐसे मंत्री को सदन के नेता के रूप में कार्य करने के लिए मनोनीत करता है, जो लोकसभा का सदस्य हो। इसी तरह राज्य सभा में भी सदन का नेता होता है। अगर प्रधानमंत्री सदन का सदस्य हो तो वही इस सदन का भी नेता होता है लेकिन प्रधानमंत्री के लोकसभा सदस्य होने पर उसके द्वारा नियुक्त कोई मंत्री जो राज्यसभा का सदस्य हो, सदन का नेता मनोनीत होता है।

प्रत्येक सदन में नेता विपक्षी होता है जो उस सभा (लोकसभा या राज्यसभा) में ऐसे सदस्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जो उस सभा में सरकार के विपक्ष में बैठने वाली सबसे बड़ी पार्टी का नेता हो और राज्यसभा के सभापति अथवा लोकसभा के अध्यक्ष (स्पीकर) द्वारा मान्यता प्राप्त हो।

पहले आम चुनाव में 14 राष्ट्रीय दलों तथा 39 अन्य राज्यस्तरीय दलों ने हिस्सा लिया जबकि 15वीं लोकसभा (2009) के लिए हुए आम चुनाव में 7 राष्ट्रीय दलों और 34 राज्य स्तरीय दलों और 322 पंजीकृत (गैर-मान्यता प्राप्त) दलों ने हिस्सा लिया। पहले आम चुनाव (1951-52) में लोकसभा की कुल निर्वाचित सीटें 489 थीं जो 15वीं लोकसभा के चुनाव में बढ़कर 543 हो गईं। इनमें दो एंग्लो इंडियन नाम निर्देशित सदस्य भी शामिल हैं।

आठवीं लोकसभा (1985-89) तक सदन में एक दल का पूर्ण बहुमत रहा। उसके बाद से किसी भी एक राजनीतिक दल को अकेले पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। आठवीं लोकसभा तक सदन में राजनीतिक दलों की संख्या 20 से कम रही लेकिन बारहवीं लोकसभा में यह बढ़कर 39 हो गई। तेरहवीं और चौदहवीं लोकसभा में 38 रही जबकि पंद्रहवीं लोकसभा के गठन तक 37 है। वर्तमान में लोकसभा में 38 राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व है। राज्यस्तरीय (क्षेत्रीय दलों) की संख्या दसवीं लोकसभा तक 66 से कम थी जो ग्यारहवीं लोकसभा में 129, बारहवीं लोकसभा में 101, तेरहवीं लोकसभा में 158 और चौदहवीं लोकसभा में 159 हो गई। पंद्रहवीं लोकसभा में क्षेत्रीय दलों की संख्या 146 हो गई।

पहले आम चुनाव में महिला सदस्यों की संख्या 21 थी जो 15वें लोकसभा आम चुनाव में 58 पर पहुंच गई। अप्रैल 2012 तक नाम निर्देशित सहित महिला सदस्यों की संख्या 60 थी।

भारत की संसद ने अपने गठन के छह दशकों के दौरान सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन के साधन के रूप में कार्य करते हुए अनेक विधान बनाए। भारत के संविधान में जून 2012 तक 97 संशोधन किए गए हैं। लोकसभा में राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व के मामले में व्यापक परिवर्तन हुए हैं।

लोकसभा की अवधि

बारहवीं लोकसभा एक वर्ष, 6 माह और 14 दिन तक अस्तित्व में रही। यह लोकसभा अब तक गठित 15 लोकसभाओं में सबसे कम कार्यकाल तक अस्तित्व में रही, जबकि सर्वाधिक लंबा कार्यकाल पांचवीं लोकसभा का है जो 5 वर्ष 10 माह और एक दिन तक अस्तित्व में रही।

बाधाओं के कारण समय की बर्बादी

व्यवधान के कारण बार-बार लोकसभा की कार्यवाही स्थगित होने से इसके मूल्यवान समय की बर्बादी हुई है। पंद्रहवीं लोकसभा में 33.64 प्रतिशत समय बर्बाद हुआ, जोकि सर्वाधिक 447 घंटे 50 मिनट है। दसवीं लोकसभा में 9.95 प्रतिशत समय (279 घंटे 25 मिनट), ग्यारहवीं में 5.28 प्रतिशत समय (45 घंटे, 20 मिनट), बारहवीं लोकसभा में 11.93 प्रतिशत समय (68 घंटे, 37 मिनट), और चौदहवीं लोकसभा में 19.58 प्रतिशत समय (423 घंटे) बर्बाद हुआ। पहली से नवीं लोकसभा की अवधि के दौरान व्यवधान के कारण बर्बाद हुए समय से संबंधित आंकड़े उपलब्ध नहीं हुए।

पुनःस्थापित और पारित विधेयक

पहली से पंद्रहवीं लोकसभा तक लोकसभा में कुल मिलाकर 3,471 विधेयक पारित हुए। गैर-सरकारी सदस्यों के कुल 14 विधेयक पहली से लेकर चौथी लोकसभा के दौरान पारित हुए हैं।

संसदीय समितियां

संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं, जिनमें पहली स्थाई समितियां हैं, जबकि दूसरी तदर्थ समितियां हैं। स्थाई समितियां का निर्वाचन समय-समय पर या प्रत्येक वर्ग, यथास्थिति, लोकसभा/राज्यसभा द्वारा किया जाता है जबकि तदर्थ समितियों का गठन किसी विशेष मामले पर विचार करने और तत्संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है और इन समितियों का कार्यकाल अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के साथ समाप्त हो जाता है।

विश्वास और अविश्वास प्रस्ताव

भारत में सात प्रधानमंत्रियों के विरुद्ध 26 अविश्वास प्रस्ताव पेश किए गए। इनमें से अकेले श्रीमती इंदिरा गांधी ने 16 वर्षों के कार्यकाल के दौरान 15 अविश्वास प्रस्तावों का सामना किया, जिनमें 12 प्रस्ताव 1966 और 1977 के बीच तथा तीन प्रस्ताव 1980 से 1984 के बीच लाए गए थे। प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री और श्री पी.वी. नरसिंह राव के विरुद्ध तीन-तीन अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए थे। प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के विरुद्ध दो अविश्वास प्रस्ताव रखे गए थे।

प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री राजीव गांधी और श्री अटल बिहारी वाजपेयी के मंत्रिपरिषद के विरुद्ध एक-एक अविश्वास

प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। प्रधानमंत्री चौधरी चरणसिंह, श्री वी. पी. सिंह और श्री चंद्रशेखर, श्री एच. डी. देवेगौड़ा, श्री आई. के. गुजराल और श्री मनमोहन सिंह के ख़िलाफ़ कोई अविश्वास प्रस्ताव नहीं रखा गया।

अब तक लोकसभा में आठ प्रधानमंत्रियों ने 12 विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किए, जिनमें सबसे अधिक तीन विश्वास प्रस्ताव प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी के कार्यकाल के दौरान ग्यारहवीं और बारहवीं लोकसभा में प्रस्तुत किए गए। श्री वी. पी. सिंह और एच डी देवेगौड़ा ने दो-दो तथा प्रधानमंत्री चंद्रशेखर सिंह, श्री पी. वी. नरसिंह राव, श्री आई. के. गुजराल और डॉ. मनमोहन सिंह में से प्रत्येक ने अपने-अपने मंत्रिपरिषद में एक-एक विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया। चौधरी चरणसिंह के विश्वास प्रस्ताव को नहीं लिया जा सका क्योंकि प्रस्ताव जाने से पहले ही उन्होंने त्यागपत्र दे दिया था।

प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्रीमति इंदिरा गांधी, श्री मोरारजी देसाई तथा श्री राजीव गांधी के मामले में विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव तथा श्री अटल बिहारी वाजपेयी ऐसे प्रधानमंत्री थे जिन्होंने विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के साथ ही अविश्वास प्रस्ताव का भी सामना किया। श्री अटल बिहारी वाजपेयी एकमात्र ऐसे सदस्य थे जिन्होंने किसी सत्तारूढ़ सरकार के विरुद्ध स्वयं अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में अविश्वास प्रस्ताव का भी सामना किया और अपनी मंत्रिपरिषद में विश्वास हेतु एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

अब तक कुल 26 अविश्वास प्रस्ताव और 11 विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत हुए हैं। जिसमें सबसे लंबी अवधि छह दिनों तक श्री लालबहादुर शास्त्री सरकार के ख़िलाफ़ श्री एन. सी. चटर्जी द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा हुई। सबसे कम समय 6 घंटे और 6 मिनट तक श्रीमति इंदिरा गांधी के विरुद्ध प्रस्ताव पर (मई 1975 में) चर्चा हुई, जिसे श्री ज्योतिर्मय बसु ने रखा। विश्वास प्रस्तावों में सबसे कम समय श्री वी. पी. सिंह द्वारा प्रस्तुत पहले विश्वास प्रस्ताव पर चर्चा हुई, जिसमें कुल 5 घंटे 20 मिनट तक चर्चा हुई। सबसे कम अंतर (14 मतों से) श्री अजय मुखोपाध्याय द्वारा श्री नरसिंहराव सरकार के विरुद्ध रखा गया (28 जुलाई, 1993) अविश्वास प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

पांच विश्वास प्रस्तावों में चौधरी चरणसिंह ने अगस्त, 1977 में प्रस्ताव लिए जाने से पहले ही त्यागपत्र दे दिया। जब श्री वी. पी. सिंह (नवंबर 1990 में) और श्री अटल बिहारी वाजपेयी (मई 1996 में अपने पहले तथा 1999 में दूसरे कार्यकाल के दौरान) ने मतदान से पहले ही त्यागपत्र देने की घोषणा कर दी थी।

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना

बारहवीं लोकसभा के चौथे सत्र के दौरान संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (लोकसभा) संबंधी एक नयी तदर्थ समिति गठित की गई। भारत सरकार ने 23 दिसंबर, 1993 तक यह योजना (एमपी लैड्स) शुरू की, जिसके अंतर्गत प्रत्येक सांसद अपने निर्वाचन क्षेत्र के अंतर्गत किए जाने वाले विकास कार्यों हेतु जिला आयुक्त को सुझाव दे सकता है। इसके लिए प्रत्येक सदस्य प्रत्येक बार एक करोड़ रुपये के विकास कार्यों का प्रस्ताव कर सकता था। सन् 1998 में इस राशि को दो करोड़ तथा वर्ष 2011 में 5 करोड़ रुपये कर दिया गया है। ❑

(लेखक नयी दिल्ली स्थित स्वतंत्र पत्रकार हैं।

ई-मेल : devendra-khumar@gmail.com)

IAS/PCS JRF/NET

संवाद IAS

....सफलता का पर्याय

हिन्दी साहित्य

भारत में→प्रत्येक वर्ष→सर्वोच्च अंक→'संवाद' से

C.S 08-09: (Ajay Kumar) 202+162 =369,
C.S 09-10: (Amit Rajan) 179+203 =382,
C.S 10-11: (Ajay Kumar) 386 अंक
C.S 10-11: (Sanjay Kumar) (197+159 =356)
BPSC: (Amitabh) 304 (76%)

दिल्ली केंद्र (कक्षा समय)

प्रथम बैच 9 A.M. द्वितीय बैच 4 P.M.
तृतीय बैच 6:30 P.M. Weekend Batch

क्रैश कोर्स | टेस्टसिरीज | मॉडल उत्तर

सामान्य अध्ययन
CSAT + G.S.

निबंध
टेस्ट + कक्षा

पत्राचार पाठ्यक्रम
(Printed+ Class Notes), Test Series+ मॉडल उत्तर
(हिन्दी साहित्य, सा० अध्ययन, CSAT, निबंध, लोक प्रशासन, इतिहास)

107/307 Joyti Bhawan, Mukherjee Nagar, Delhi-9
09213162103, 09891360366, 011-27654187

पटना केंद्र भी : (पंडुई कोठी, बोरिंग रोड)

YH-90/2012

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

PALI

रजनीसो तोमरो

जिनके निर्देशन में वर्ष 2011-12 में शानदार सफलता

48 Selections in IAS (M)-2011 with PALI

17 August — कक्षारम्भ 7:30 am. (मुखर्जी नगर) / 6:00 pm. (राजेन्द्र नगर)

Next Batch

3 November — कक्षारम्भ 7:30 am. (मुखर्जी नगर) / 6:00 pm. (राजेन्द्र नगर)

प्रारंभिक परीक्षा में सफल उम्मीदवारों के लिए PALI की Test Series की व्यवस्था अगस्त माह में।

सामान्य अध्ययन

(प्रारंभिक सह मुख्य परीक्षा)

मुख्य मार्गदर्शक रजनीश तोमर

(सामान्य अध्ययन के अध्यापन का 10 वर्षों का अनुभव)

Our Team

भारतीय इतिहास (प्रा॰ एवं मुख्य)	- रजनीश तोमर
भूगोल (प्रा॰ एवं मुख्य)	- रजनीश तोमर
समसामयिकी (प्रा॰ एवं मुख्य)	- रजनीश तोमर
भारतीय राजव्यवस्था (प्रा॰ एवं मुख्य)	- रजनीश तोमर
भारत एवं विश्व (मुख्य)	- रजनीश तोमर
लोक नीति (Public Policy)	- डी॰ के॰ गौर
सामान्य विज्ञान (प्रा॰)	- आनन्द अग्रवाल (IIT. Delhi)
विज्ञान एवं तकनीक (मुख्य)	- आनन्द अग्रवाल (IIT. Delhi)
पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण (प्रा॰)	- डॉ॰ राकेश रंजन (JNU)
भारतीय अर्थव्यवस्था	- विशेषज्ञ
सांख्यिकी (मुख्य)	- अभिजीत कुमार

एवं अन्य विशेषज्ञ मार्गदर्शक

2 Nov. — कक्षारम्भ 10:00 am. / 1:00 pm. (मुखर्जी नगर)

विशेषता

- मुखर्जीनगर में सबसे अलग हटकर अनुभवी विशेषज्ञों की टीम।
- मुखर्जीनगर में उपलब्ध Outdated Notes के स्थान पर सभी खण्डों के अद्यतन Printed Notes.
- प्रश्नों की बदलती प्रकृति के अनुरूप व्याख्यान।
- प्रारंभिक परीक्षा में अभ्यास के लिए 15000 प्रश्नों का (व्याख्यात्मक) अभ्यास Set
- प्रारंभिक परीक्षा के लिए 21 Test (व्याख्यात्मक) की व्यवस्था।
- समसामयिकी पर रजनीश तोमर के द्वारा विशेष कक्षा का आयोजन।

UDAI PUR में

IAS, RAS, Bank P.O., Clerk

एवं अन्य प्रतियोगिता परिक्षा के लिए।

Vishwas Education

की शाखा/ Branch शीघ्र

प्रारंभ की जा रही है। इसके लिए सम्पर्क करें।

09924191307

VISHWAS EDUCATION PVT LTD

(An Institute for I.A.S./G.P.S.C./P.S.I./Staff Selection/Bank Exam.)

MUKHERJEE NAGAR
102-40/41 IInd Floor
Ansal Building
B/h. HDFC Bank
Delhi-09
PH. (011)-27652066/67
9891605091
9953468158

RAJENDRA NAGAR
76, Old Rajendra
Market, Nr. Axis Bank,
Rajendra Nagar
New Delhi-60
PH. (011)-41412463,
9891605091
9810318024

AHMEDABAD
A/1/G, Chinubhai Tower
Nr, H.K. College,
Ashram Road
Ahmedabad-09
Ph: (079) 26586832
9924191307
9427071727

BHAVNAGAR
110, SURABHI MALL,
WAGHAVADI ROAD,
BHAVNAGAR-02
Ph: (0278)-2561211
09428804127

YH-102/2012

साढ़े छह दशक के विकास के हासिल

● रहीस सिंह

भारत ने पिछले 65 वर्षों में विकास के साथ परिवर्तन का एक लंबा रास्ता तय किया है। इस दौर में भारत राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था से बाज़ार नियंत्रित अर्थव्यवस्था की ओर तेज़ी से बढ़ा, नवउदारवाद के साथ आलिंगनबद्ध हुआ, निजी क्षेत्र की उंगली पकड़कर विकास को गति देने की नीति अपनाई, जवाहरलाल नेहरू और राम मनोहर लोहिया की छह आने बनाम सवा रुपये के विषय को नेपथ्य की ओर धकेला और उद्योग की बजाय सेवा की चकाचौंध में खो जाना स्वीकार किया। नवउदारवाद को अपनाने के बाद भारत एक पिछड़ी हुई विकासशील अर्थव्यवस्था से एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था में तब्दील हुआ और वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक मुक़ाम हासिल कर लिया। भारतीय अर्थव्यवस्था की इस गति को देखते हुए दुनिया के कुछ अर्थशास्त्री और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं अमरीकी विद्वान लेस्टर सी. थूरो द्वारा 'दि यूचर ऑफ कैपिटलिज़्म' में स्थापित किए गए सिद्धांत पर चीन के साथ भारत को खरा उतरते हुए देखने लगे। यही नहीं यहां तक घोषणा कर दी गई कि अमरीका के प्रभाव में संचालित एकध्रुवीय व्यवस्था के दिन लद चुके हैं और एक बहुध्रुवीय संसार उभर कर विश्व रंगमंच पर आ चुका है। इसी का परिणाम था विच्छेदीकरण (डी-कपुलिंग) की अवधारणा जो विश्व बैंक के कुछ अर्थशास्त्रियों ने प्रस्तुत की थी। लेकिन ऐसे बहुत से पहलू हैं जो हमारी प्रगति पर कुछ प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं। इनमें कुछ तो ऐसे दृश्य हैं, जिन पर अकसर अर्थशास्त्री विमर्श करते हुए दीखते हैं लेकिन कुछ अदृश्य हैं। इन चर्चाओं में अकसर ऐसे प्रश्न उठे हैं कि विकासदर बढ़ाने के मूलमंत्र पर आगे बढ़ने की नीति कितनी कारगर रही है? सार्वजिनक उपक्रमों को धड़ल्ले से निजी हाथों में सौंपने की नीति क्या वास्तव में हमारे हितों के अनुकूल है? आखिर अब तक जो प्रगति हुई है, वह कितनी सार्थक है और उसका वास्तविक लाभ किसे मिला ? क्या इस प्रगति का संबंध देश के दीगर लोगों से भी है? क्या गांधी का वह व्यक्ति, जो अंतिम पंक्ति में अंतिम पायदान पर खड़ा था, इससे कुछ हासिल कर सका? क्या राज्य नवउदारवाद और निजीकरण के बाद उतना सबल रह गया कि 'उस व्यक्ति' के लिए सार्थक क़दम उठा सके?

दरसअल, भारत अपने विकास के सफ़र में जब से नवउदारवाद और निजीकरण के निकट आया, उसने उन नीतियों को पूरी तरह से भुला दिया जो जवाहरलाल नेहरू के दौर में शुरू हुईं थीं। नेहरू जी के काल में पारित 1956 के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव को दरकिनार कर दिया गया और अब सार्वजनिक क्षेत्र के लिए केवल प्रतिरक्षा से जुड़े उद्योग ही आरक्षित श्रेणी के बचे हैं, शेष सभी उद्योगों में निजी पूंजी निर्द्वंद्वता से प्रवेश कर गईं। राज्य द्वारा लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया ताकि निजी क्षेत्र स्वतंत्रतापूर्वक कहीं भी अपनी औद्योगिक इकाइयां लगा सकें। ऐसा करते वक़्त यह भी विचार नहीं किया गया कि इससे क्षेत्रीय और वर्गीय असमानताएं बढ़ेंगीं जिससे पृथकतावादी ताक़तों को बल मिलेगा। गौर से देखें तो पता चलता है कि जब से भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपनी प्रकृति बदली है यानी वह राज्य नियंत्रण से मुक्त होकर उदार बनी है तब से सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार पूरी तरह से खत्म हो गया है और सार्वजनिक उद्यमों को बेभाव बेचा जा रहा है। मॉडर्न बेकरीज, बालको और विदेश संचार निगम का निजीकरण इसके बेहतर उदाहरण हो सकते हैं। उत्पादन से लेकर वितरण तक निजी क्षेत्र के हवाले किया गया। बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) व्यवस्था शुरू की गई। वित्तीय कारोबार में निजी पूंजी का इनलो बढ़ता जा रहा है और कृषि क्षेत्र में संविदा खेती की शुरुआत हो चुकी है। कहने का तात्पर्य यह है कि राज्य की उदारवादी नीतियां जो पिछली अर्द्धशती के प्रयासों की अनदेखी करके शुरू की गईं, वे विकास की अनिवार्य शृंखला के रूप में स्थापित कर दी गईं।

नेहरू जी के काल में अर्थव्यवस्था का जो मॉडल (मिश्रित अर्थव्यवस्था) अपनाया गया था उसका दबदबा 1970 के दशक के मध्य तक बना रहा। इस दौर में सरकार ने सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की सीमाओं को निरंतर संयमित और नियंत्रित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका बढ़ी और नये उपक्रम लगाए गए। साथ ही निजी उद्यमों का राष्ट्रीयकरण कर उनका विस्तार किया गया। इस दशक में दुनिया ने फिर कुछ उतार-चढ़ाव देखें जिनमें उत्पादन में ठहराव और मुद्रास्फीति में तीव्रता प्रमुख थे। ये प्रवृत्तियां मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए अहितकारी थीं क्योंकि इसके बाद मिल्टन फ्रीडमैन की नीतियों पर थैचर और रोनाल्ड रीगन ने स्वीकृति की मुहर लगा दी जिससे पुनः उदारवाद का रास्ता नवउदारवाद के नाम पर साफ़ हो गया। मिल्टन फीडमैन ने न सिर्फ़ सार्वजनिक उद्यमों को समाप्त करने और मुद्रा बाज़ार आधारित पूंजीवाद की वक़ालत की

बल्कि मौलिक आवश्यकता से जुड़े क्षेत्रों को भी बाज़ार के हवाले करने का सूत्र प्रतिपादित कर दिया। चूंकि भारत जैसे देश इसी दौर में आर्थिक संकट से गुज़र रहे थे, उनके विदेशी मुद्रा भंडार सूख गए थे, सार्वजनिक उद्यमों के कार्य-निष्पादन में गिरावट आ रही थी, मज़दूर अड़ियल रुख अपना रहे थे और सोवियत संघ का साम्यवादी महल ढह गया था। अब इन स्थितियों में दुनिया के अन्य विकासशील देशों की तरह भारत के नेतृत्व को वही रास्ता सबसे उपयुक्त लगा जिसे पूंजीवादी दुनिया निर्मित कर रही है। यह जो कुछ भी हो रहा था, उसका प्रेषित उद्देश्य था विकासदर (सही अर्थों में ग्रोथ न कि डेवलपमेंट) को बढ़ाना और ट्रिकल डाउन सिद्धांत की उंगली पकड़कर इस ग्रोथ को नीचे तक पहुंचाना। लेकिन क्या ऐसा हुआ?

नवउदारवाद के साथ विनिवेश के नाम पर जो सार्वजनिक उद्यमों की बिक्री शुरू हुई उस पर गौर करना यहां ज़रूरी होगा क्योंकि उसने लगभग चार दशकों की अर्थनीति को बिल्कुल उलट दिया था। उस समय इस नीति का मकसद यह बताया कि सरकार के लिए मूल्यवान संसाधनों को पैदा करना और निजी क्षेत्र के लोगों या फर्मों को राष्ट्र के विकास में सक्रिय योगदान के अवसर उपलब्ध कराना है। सामान्य तौर पर तो विनिवेश से सरकार के लिए जो संसाधन पैदा होते हैं वे विकास और राजकोषीय घाटे के बीच एक पुल का कार्य करते हैं यानी एक तरफ उनसे राजकोषीय घाटा नियंत्रित होता है और दूसरी तरफ केंद्रीय विकासात्मक परियोजनाओं के लिए धन उपलब्ध हो जाता है। इससे आर्थिक विकास को त्वरित गति प्रदान की जा सकती है। इसके पीछे एक मान्यता यह भी है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां जनता के पैसे से बनी हैं, इसलिए यदि सरकार इनका निजीकरण करती हैं तो उससे मिलने वाले धन का पुनर्निवेश उसी के लिए करे। इससे राजकोष पर प्रभाव भी नहीं पड़ेगा और लोकहित में विकास की प्रक्रिया तीव्र गति से चलती रहेगी। परंतु इसके कुछ ज़रूरी पक्ष भी थे। पहला यह कि क़ीमत का निर्धारण उचित प्रकार से हो? विनिवेश प्रक्रिया से प्राप्त धन से राजकोषीय घाटे को पाटने का कार्य न किया जाए जो सरकार की कार्य प्रणाली का परिणाम है बल्कि जनता के धन का जनता के लिए ही पुनर्निवेश हो। लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या यह व्यवस्था उन मूल्यों का अनुसरण करने में समर्थ थी जिन्हें नेहरू जी ने सुनिश्चित किया था। भारत ने भी जब उदारवाद का रास्ता चुना तो उसने भी प्रोपर्टी राइट्स थ्योरी को अपनाया और जुलाई 1991 में विनिवेश नीति का निर्माण किया। उस समय भारत सरकार की विनिवेश नीति के निम्नलिखित उद्देश्य थे- 1. बजेटरी आवश्यकताओं को पाना, 2. समग्र आर्थिक क्षमता को बढ़ाना, 3. राजकोषीय घाटे को कम करना, 4. निजी उद्यम की क्षमता को बढ़ाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी (पीएसयू) के स्वामित्व का विविधीकरण करना, 5. टेक्नोलॉजिक अपग्रेडेशन, आधुनिकीकरण और पीएसयू के विस्तार के लिए मद निर्मित करना और 6. क्षतिपूर्ति के लिए मद निर्मित करना।

विकासक्रम की दृष्टि से देखें तो सर्वप्रथम 1991-92 के बजट में चुनिंदा सर्वाजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सरकारी इक्विटी का 20 प्रतिशत तक सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थागत निवेशकों के पक्ष में विनिवेश करना था। इस नीति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए इक्विटी का व्यापक आधार तैयार करना, प्रबंधन में सुधार लाना, संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि करना तथा राजकोष के लिए संसाधन जुटाना था। 1993 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में विनिवेश के लिए रंगराजन समिति गठित की गई जिसने पर्याप्त विनिवेश की आवश्यकता पर बल दिया और आरक्षित उद्योगों के लिए विनिवेश की जाने वाली इक्विटी का प्रतिशत 49 के ऊपर तक पहुंचा दिया। इसमें सिफ़ारिश की गई कि आपवादिक मामलों में, अर्थात ऐसे उद्यम जिनका बाज़ार में शेयर आधिपत्य था अथवा जहां सामरिक कारणों को लेकर अलग पहचान बनाए रखने की आवश्यकता थी, सार्वजनिक स्वामित्व के स्तर का लक्ष्य 26 प्रतिशत तक रखा जा सकता है अर्थात 74

तालिका-1

वर्ष 1991-2008 में बजटीय लक्ष्य एवं विनिवेश से प्राप्त धनराशि

वर्ष	बजटीय लक्ष्य (करोड़ रुपये)	विनिवेश से प्राप्त धनरशि (करोड़ रुपये)
1991-92	2,500	3,037.74
1992-93	2,500	19,12.51
1993-94	3,500	---
1994-95	4,000	4,843.10
1995-96	7,000	168.48
1996-97	5,000	379.67
1997-98	4,800	910.00
1998-99	5,000	5371.11
1999-2000	10,000	1,860.14
2000-01	10,000	1,871.26
2001-02	12,000	5,657.69
2002-03	12,000	3,347.98
2003-04	14,500	15,547.41
2004-05	4,000	2,764.87
2005-06	कोई लक्ष्य नहीं	1,569.68
2006-07	कोई लक्ष्य नहीं	-----
2007-08	कोई लक्ष्य नहीं	2,366.94
कुल	**96,800**	**51,608.58**

स्रोत : *श्वेत पत्र (भारत सरकार)*

प्रतिशत तक की सीमा तक विनिवेश किया जा सकता है। अन्य सभी मामलों में सरकारी भागीदारी का शत-प्रतिशत विनिवेश करने की सिफ़ारिश कर दी गई। 51 प्रतिशत अथवा अधिक इक्विटी को सरकार के पास बनाए रखने की सिफ़ारिश केवल छह अनुसूचित उद्योगों के लिए की गई थी, जो हैं- कोयला और लिग्नाइट, खनिज तेल, हथियार, गोला-बारूद तथा रक्षा उपस्कर, परमाणु ऊर्जा, रेडियोधर्मी खनिज और रेल यातायात। 1996 के न्यूनतम साझा कार्यक्रम के तहत एक विनिवेश आयोग गठित करने का निर्णय लिया गया और अगस्त 1996 को उसकी स्थापना कर दी गई। 30 नवंबर, 1999 को आयोग का कार्यकाल पूरा हो गया और जुलाई 2001 में रिकंस्टीट्यूट किया गया। आरंभ में विनिवेश विभाग की स्थापना की गई लेकिन बाद में उसे अपग्रेड करके विनिवेश मंत्रालय की स्थापना हुई। यह सब इसलिए हुआ ताकि सार्वजनिक उपक्रमों को यथाशीघ्र बेचा जा सके। 1991 से 2008 तक के विवरण को तालिका-1 में देखा जा सकता है।

5 नवंबर, 2009 को आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति ने सीपीएसई में विनिवेश की महत्वपूर्ण घोषणा की। चूंकि सरकार का राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में 2009-10 में 6.8 प्रतिशत आंका गया था, जो काफी ऊंचा था, इसलिए सरकार ने वित्तीय प्रबंधन को ठीक रखने की दृष्टि से विनिवेश का सहारा लेने का निर्णय लिया। अब विनिवेश के मद्देनज़र सरकार की बाज़ार में मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन बिठाने की कवायद के तहत नकदी के मामले में संपन्न सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को दूसरे केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (सीपीएसई) के शेयर खरीदने की मंजूरी दे दी गई है। अब तक सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को बैंकों में सावधि जमा के अलावा म्युचुअल फंडों में निवेश की ही मंजूरी थी, लेकिन कैबिनेट ने अब इन कंपनियों को अन्य सीपीएसई के शेयर खरीदने की अनुमति देने के प्रस्ताव पर अपनी मुहर लगा दी है। अब वित्त वर्ष 2012-13 में सरकार ने 30,000 करोड़ रुपये के विनिवेश का लक्ष्य रखा है, जबकि 2011-12 में 40,000 करोड़ रुपये के विनिवेश का लक्ष्य था।

अब प्रश्न यह उठता है कि साढ़े छह दशकों में जो यह परिवर्तन आया उससे निबल अर्जन कितना हुआ? आखिर जब सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को सरकार पूरी तरह से बेच डालेगी तो फिर राजकोषीय घाटा पूरा करने या मनरेगा जैसे अनुत्पादक क्षेत्र के लिए पैसा कहां से उपलब्ध कराएगी? हमारी अर्थव्यवस्था ने सेवाक्षेत्र पर आधारित एक भारी-भरकम ढांचा खड़ा करने की कोशिश की और अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाने वाले विनिर्माण और उद्यमों को किनारे कर दिया। हमने विकास के जादुई काल में इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि सेवा क्षेत्र अनुत्पादक होता है। इस दौर में जो हमारी प्रौद्योगिकी विकसित हुई उसे 'बैकवर्ड लिंकेज' पर प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि हमारी खेती चीन जैसे देश के मुक़ाबले बहुत पिछड़ गई, जिस पर आज भी साठ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निर्भर है। इस प्रकार के विकास का ही नतीज़ा है कि अर्जुन सेन गुप्ता समिति की रिपोर्ट ने यह देख लिया कि भारत की लगभग 77 प्रतिशत आबादी बीस रुपये से कम पर जीवनयापन करती है। यही नहीं सुरेश तेंदुलकर रिपोर्ट भी यह मानती है कि लगभग 37.5 प्रतिशत लोग ग़रीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं। यदि पचास और साठ के दशकों के बाद की मुद्रास्फीति को जोड़ लिया जाए तो आज भी आधी आबादी की प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति आय पचास के दशक के देश के ग़रीबों की रोज़ाना की आमदनी के छह आने से सवा रुपये (डा. राम मनोहर लोहिया और जवाहरलाल नेहरू के बीच इसी को लेकर बहस हुई थी) के मध्य बैठती है। लघु उद्योगों की छह लाख इकाइयां बंद हो गई हैं। ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया की रिपोर्ट बताती है कि पिछले 10 वर्षों से भारत में ग़रीबी तेज़ रफ़्तार पकड़ रही है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की आय प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत की दर से गिर रही है। कृषि और किसानों की स्थिति से भारतवासी परिचित ही हैं। अभी तक तो अर्थव्यवस्था की विकासदर को आगे कर सफलता की बात की जा रही थी, लेकिन अब वहां भी ऐसा कुछ नहीं रह गया। यही नहीं आंतरिक सार्वजनिक ऋण का प्रतिशत जीडीपी के सापेक्ष लगातार बढ़ता जा रहा है। राज्यों और केंद्र की ओर से उधारी के ज़रिये जुटाई गई रक़म का प्रयोग अल्पावधि में मांग पैदा करने के लिए किया जा रहा है। यही नहीं 13वें वित्त आयोग केंद्र और राज्यों की संयुक्त सार्वजनिक उधारी जीडीपी की 81 प्रतिशत के आसपास है।

जहां तक देश के दीगर लोगों का सवाल है तो सरकारी आंकड़ों में ग़रीबी दर को घटाने पर ज्यादा ज़ोर दिया गया है लेकिन अन्य अध्ययन बताते हैं वे आंकड़े त्रुटिपूर्ण हैं। सच बात तो यह है कि हमारे नीतिकार अभी तक यह भी सुनिश्चित नहीं कर पाए हैं कि ग़रीब कौन हैं? आखिर वह कितनी रक़म है जिसे कमाने या ख़र्च करने वाला व्यक्ति ग़रीबी रेखा के ऊपर होगा। सच में, यह सवाल इतना आसान नहीं है। लगभग 1.21 अरब की जनसंख्या वाले देश में कई समितियां ग़रीबी का आकलन कर चुकी हैं लेकिन अब तक ग़रीबों की सही तादाद या ग़रीबी के लिए किसी मानक पर सहमति नहीं बन पाई है। लकड़वाला समिति के अनुसार 26 प्रतिशत लोग ग़रीब हैं तो सुरेश तेंदुलकर के मुताबिक 37.2 प्रतिशत, जबकि विश्व बैंक मानती है कि यह आंकड़ा 42 प्रतिशत का है। एन.सी. सक्सेना कमेटी का कहना है कि देश में आधे लोग ग़रीब हैं और अर्जुनसेन गुप्ता के मुताबिक 84.8 करोड़ लोग प्रतिदिन 20 रुपये से भी कम आमदनी पर जीवन बसर करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी आकलन 2004-05 को आधार बनाकर पेश किए गए हैं। इन सबका सूत्र एक ही है और वह है राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान की ओर से लोगों की खपत को आधार बनाना। लगभग तीन दशकों से 2,400 और 2,100 कैलोरी (क्रमशः ग्रामीण और शहरी) की खपत को ही आधार माना जा रहा है लेकिन सुरेश तेंदुलकर ने इसमें बदलाव किया और इसमें भोजन के साथ स्वास्थ्य तथा शिक्षा को भी जोड़ दिया। वास्तव में मनुष्य सामाजिक प्राणी है इसलिए उसे केवल भोजन नहीं वस्त्र, स्वास्थ्य और शिक्षा पर भी अनिवार्य रूप से ख़र्च करना होता है, फिर केवल कैलोरी ही ग़रीबी का आधार क्यों? ऑक्सफोर्ड पॉवटी एंड ह्यूमन डेवलपमेंट इनीशिएटिव ने एमपीआई (मल्टी डाइमेंशनल पॉवर्टी इंडेक्स) का प्रयोग कर बताया कि भारत में 65 करोड़ लोग ग़रीब हैं। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।
ई-मेल : raheessingh@gmail.com)

हिग्स बोसोन क्या है?

● **हिग्स बोसोन क्या है?**

भौतिकशास्त्रियों ने एक बड़ी छलांग लगाते हुए एक उप-परमाणु कण का पता लगाने का दावा किया है जो हिग्सबोसोन अथवा गॉड पार्टिकिल (ईश्वरीय कण) से मेल खाता है। जिसे इस ब्रह्मांड के सृजन का एक निर्णायक स्तंभ माना जाता है। इस दुर्लभ हिग्स की 50 वर्षों की खोज में इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा रहा है। विश्वास किया जाता है कि 13.7 अरब वर्ष पूर्व बिग बैंग के बाद तारों और ग्रहों की रचना में जिन कणों का योगदान था, उन्हें भार प्रदान करने का काम हिग्स ने ही किया था। 'हिग्स बोसोन' से मेल खाते कण की खोज भौतिकी और सांख्यिकी के क्षेत्र में और विस्तृत अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करता है। इस अध्ययन से नये कण के गुणों का पता लगाया जा सकेगा। इससे ब्रह्मांड के अन्य रहस्यों पर प्रकाश पड़ने की संभावना है।

विश्व के सबसे बड़े परमाणु भंजक की खोज में जो दो टीमें लगी थीं, उनमें से एक है- सीएमएस। सीएमएस के प्रमुख जो इन्कैंडेला ने यूरोपीय परमाणु अनुसंधान केंद्र (सीईआरएन) के वैज्ञानिकों से खचाखच भरे कार्यक्रम में बताया कि खोज की निश्चितता के लिए आवश्यक आंकड़ों के स्तर तक पहुंचा जा चुका है। परंतु उन्होंने यह पुष्टि नहीं की कि नया कण ही वास्तव में सूक्ष्म और दुर्लभ हिग्स बोसोन है, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वही ब्रह्मांड के सभी पदार्थों को आकार और रूप प्रदान करता है। भौतिक शास्त्रियों की अन्य टीम 'एटलस' ने भी एक नये कण को ढूंढने का दावा किया है जोकि संभवत: हिग्स बोसोन ही है। परंतु इन निष्कर्षों के प्रकाशन में अभी कुछ और समय लगेगा।

सर्न (सीईआरएन) ने कहा है कि विशाल हैड्रॉन कोलाइडर (एलएचसी) में जिस कण का पता उसने लगाया है वह चिर-प्रतीक्षित 'हिग्स बोसोन' से मेल खाता है। परंतु इस खोज की वास्तविक पहचान में अभी कुछ समय लगेगा।

● **ईश्वरीय कण (गॉड पार्टिकिल) किसे कहते हैं?**

'स्टैंडर्ड मॉडल' को एक अति सफल सिद्धांत माना जाता है, परंतु इसमें कुछ प्रश्न अनुत्तरित हैं। सबसे बड़ा प्रश्न है कि ऐसा क्यों है कि कुछ कणों में भार होता है जबकि कुछ में नहीं।

हिग्स और कुछ अन्य वैज्ञानिकों का विचार था कि ऐसा विश्वास किया जाता है कि 13.7 अरब वर्ष पूर्व 'बिग बैग' द्वारा निर्मित अदृश्य, सर्वव्यापी क्षेत्र में बोसोन का अस्तित्व मौजूद था। सर्न के पास एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें प्रोटोन्स को लगभग प्रकाश की गति से एक-दूसरे से टकराया जाता है, जिससे उप-परमाणुवीय टुकड़े बिखरकर निकलते हैं, जिनका दुर्लभ हिग्स के अस्तित्व का पता लगाने हेतु छानबीन की जाती है।

हिग्स को ईश्वरीय कण (गॉड्स पार्टिकिल) कहा जाता है, क्योंकि यह शक्तिशाली है और सर्वत्र है, फिर भी इसे ढूंढना कठिन है। पिछले कुछ वर्षों से अरबों डॉलर ख़र्च कर लाखों वैज्ञानिक इसकी खोज में लगे हैं। धीरे-धीरे भार के उस क्षेत्र तक निकट पहुंचते जा रहे हैं, जहां उसका अस्तित्व संभव हो।

● **इसका पता कैसे लगा?**

'हिग्स बोसोन' जैसे कण की खोज जेनेवा के पास धरती के नीचे 300 फीट की गहराई से दस अरब डॉलर के ख़र्च से बने 'लार्ज हैड्रान कोलाइडर' में हुई है। एलएचसी को इस प्रकार बनाया गया है कि प्रोटोन्स को अति तीव्र गति पर आपस में टकराया जाए ताकि छोटे-छोटे आग के गोले बनें और वो उन परिस्थितियों की रचना करें जोकि ब्रह्मांड के अस्तित्व में आने से पूर्व बनी हुई थी। उस समय ब्रह्मांड एक सेकंड के दस खरबवें क्षण से भी कम समय का रहा होगा।

● **यह खोज इतनी महत्वपूर्ण क्यों है?**

इस खोज से भौतिकी के 'स्टैंडर्ड मॉडल' (मानव आदर्श) की पुष्टि हो सकेगी। इस सिद्धांत ने जिन अन्य कणों की भविष्यवाणी की थी, उन सबकी पहचान कर ली गई है। अभी तक अप्राप्य 'हिग्स बोसोन' की खोज के बाद वैज्ञानिक अज्ञात तथा ज्ञात पदार्थों के अन्य रहस्यों का पता विश्वासपूर्वक लगा सकेंगे।

● **आम लोगों के लिए 'ईश्वरीय कण' का क्या अर्थ है?**

- **चिकित्सकीय चित्रण (मेडिकल इमेजिंग)**

सर्न और अन्य प्रयोगशालाओं में कण भौतिकी प्रयोगों ने पोजीट्रॉन एमिशन टोमोग्राफी (पीईटी) जैसी नयी चिकित्सकीय चित्रण प्रौद्योगिकियों का मार्ग प्रशस्त किया है। यह

(शेष पृष्ठ 62 पर)

प्रगति पथ पर भारत

● नवीन पंत

आज़ादी के एक वर्ष बाद तत्कालीन सेनाध्यक्ष सर क्लाड आचिनलक ने भारत के भविष्य के बारे में अत्यंत निराशाजनक भविष्यवाणी की थी। उनके अनुसार, सिख एक पृथक राज्य की स्थापना करेंगे। इसी के साथ भारत के विघटन की शुरुआत होगी। भारत एक राष्ट्र नहीं, एक उपमहाद्वीप है। पंजाबियों और मद्रासियों में कोई समानता नहीं है। आचिनलक से पचास वर्ष पहले जॉन स्टेंवी ने भी कहा था मद्रास और पंजाब एक इकाई का हिस्सा नहीं हो सकते।

आज़ादी के दस वर्ष बाद कुछ विदेशी लेखकों, पत्रकारों और इतिहासकारों की भी यही राय थी। उनका कहना था यद्यपि एशिया अफ्रीका के अनेक नव स्वतंत्र देशों ने ब्रिटिश संसदीय प्रणाली अपनाई हैं, सूडान, पाकिस्तान और बर्मा में यह प्रयोग विफल हो गया है तथा भारत और श्रीलंका में यह जबरदस्त दबाव में है। अफ्रीका के कुछ नेताओं ने तानाशाही कायम कर ली है।

लेकिन इन भविष्यवाणियों के बावजूद भारत मज़बूती के साथ लोकतंत्र के मार्ग पर चलता रहा है। निस्संदेह देश के कुछ भागों में (पूर्वोत्तर भारत- नगा, मिजो, बोडो और मणिपुर) अलगाववाद के स्वर उभरे, हिंसक तत्वों ने सिर उठाया और संघर्ष शुरू किया लेकिन सरकार ने विद्रोही तत्वों से बातचीत करके उन क्षेत्रों की जनता की इच्छाओं, आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए नगालैंड, मिज़ोरम, मेघालय और मणिपुर राज्यों का गठन करके मामले को सुलझा लिया। नयी व्यवस्था से स्थानीय जनता संतुष्ट हैं और अलगाववादियों को समर्थन नहीं मिल रहा है। फिर भी, सरकार विद्रोहियों के साथ बातचीत को तैयार है और बातचीत करती रहती है।

आज़ादी के फौरन बाद भारत के पड़ोसी देश ने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के अफरीदियों को जिहाद के नाम पर भड़का कर जम्मू-कश्मीर पर हमला करने के लिए भेजा। उसने इन कबाइलियों को हथियार, गोला-बारूद और वाहन उपलब्ध कराए। उसने अपनी नियमित सेना के कुछ जवानों और अफसरों को भी इनके साथ नागरिक वेश में भेजा। इन लोगों ने उस क्षेत्रों में लूटमार, हत्याओं और बलात्कार का नंगा नाच किया।

कश्मीर के महाराजा ने भारतीय संघ से सहायता मांगी। 26 अक्तूबर, 1947 को जम्मू कश्मीर के भारतीय संघ में शामिल होने के बाद भारत ने वहां सैनिक भेजे। सैनिकों ने जम्मू-कश्मीर के बड़े भू-भाग से उन हमलावरों को खदेड़ा। बाद में संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप से युद्ध विराम हो गया। भारत ने वहां सामान्य स्थिति स्थापित की और जनता के प्रतिनिधियों को सत्ता सौंपी।

1965 में एक बार फिर पड़ोसी देश ने जम्मू-कश्मीर पर हमला करके उस पर कब्ज़ा करना चाहा। वह सोचता था कि स्थानीय जनता विद्रोह करेगी, उसका साथ देंगी। स्थानीय जनता ने हमलावरों को खदेड़ने में सरकार और सेना के साथ पूरा सहयोग किया। बाद में रूस की मध्यस्थता के बाद दोनों देशों के बीच पूर्व स्थिति बहाल करने पर समझौता हो गया।

जम्मू-कश्मीर में समय-समय पर चुनाव हुए हैं। अलगाववादियों की चुनाव का बहिष्कार करने की अपील के बावजूद जनता ने बड़ी संख्या में चुनावों में भाग लिया है। पिछले चुनावों के दौरान 64 प्रतिशत लोगों ने मतदान में भाग लिया।

देश के दक्षिणी भाग केरल में 1957 के चुनावों में एम.एस. नंबूदरीपाद के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ने कांग्रेस को पराजित किया। कुछ लोगों ने कम्युनिस्ट पार्टी की विजय को लोकतंत्र के लिए चुनौती और ख़तरा कहा। चुनाव जीत कर कम्युनिस्टों के सत्ता में आने

का यह पहला अवसर था। कम्युनिस्टों ने कुछ समय तक आराम से शासन किया फिर उन्होंने शिक्षा में कुछ सुधार करने चाहे। जनता ने हड़ताल-प्रदर्शन, बंद और सभाएं करके इसका विरोध किया, आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा, पुलिस ने लाठियां और गोलियां बरसाईं।

आंदोलन ने जन-आंदोलन का रूप ले लिया। राष्ट्रपति ने कम्युनिस्ट सरकार को बरखास्त करके नये चुनाव कराने के आदेश दिए। नये चुनाव में कम्युनिस्टों को 127 सीटों में से केवल 26 सीटें मिली। कम्युनिस्ट पार्टी ने लोकतंत्र का पहला पाठ, (जन समर्थन) का महत्व सीखा।

कालांतर में कम्युनिस्ट भारतीय लोकतंत्र का अभिन्न हिस्सा बन गए। बंगाल में वाम पंथी तीन दशकों तक निरंतर सत्ता में रहें। केरल और मणिपुर में भी वह बीच-बीच में सत्ता में रहें है। मणिपुर में वह आज भी सत्ता में हैं। अन्य राजनीतिक दलों की तरह वामपंथी भी लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध हैं।

मद्रास में ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरोध में ई.वी. रामास्वामी ने आवाज़ उठाई। वह दक्षिण भारत में एक पृथक राज्य द्रविणनाडु चाहते थे। उनके समर्थकों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का गठन किया। द्रमुक ने 1957 में पहली बार चुनावों में भाग लिया। उन्हें संसद में 7 और विधान सभा में 50 सीटें प्राप्त हुईं। उनको इतनी सीटें मिलना चिंता का विषय था क्योंकि वे एक पृथक राज्य की मांग कर रहे थें।

इस बीच राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफ़ारिशों के अनुसार तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश का गठन हो गया। सरकार ने यह भी घोषणा कर दी कि हिंदी किसी राज्य पर थोपी नहीं जाएगी और अंग्रेज़ी जब तक लोग चाहेंगे सरकारी कामकाज की भाषा बनी रहेगी। तमिलनाडु के अलावा तीन अन्य राज्यों की द्रविड़ राज्य में दिलचस्पी समाप्त हो गई। 1967 में द्रमुक को विधान सभा में बहुमत मिला और उसने सत्ता ग्रहण की। इसी के साथ पृथक राज्य की मांग समाप्त हो गई।

अस्सी के दशक में पंजाब में कुछ अलगाववादियों ने सिर उठाया। उन्होंने पृथक खालिस्तान की मांग की और दरबार साहिब (स्वर्ण मंदिर) सहित अन्य धार्मिक स्थानों को अपना अड्डा बनाया। जब इन लोगों ने निरअपराध लोगों की हत्या करके आतंक फैलाना शुरू किया तो सरकार को मज़बूर होकर दरबार साहिब में सेना भेजनी पड़ी। इसके बाद पंजाब में शांति स्थापित हो गई।

पचास के दशक के शुरुआत में चीन ने तिब्बत पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने भारतीय सीमा के कुछ इलाक़ों में अपना दावा करने के बाद घुसपैठ की। भारत ने इस मामले को बातचीत से सुलझाने का प्रयास किया। बातचीत सफल नहीं हुई। सितंबर 1962 में चीनी सैनिकों ने ढोला-थागला पहाड़ी पर स्थित भारतीय सैनिकों की चौकी को रौंदने के बाद भारत के काफी बड़े क्षेत्र पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद उसने एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा की और कुछ भारतीय इलाक़ों से पीछे हट गया। अभी भी भारत का काफ़ी इलाक़ा उसके कब्ज़े में है। दोनों देश सीमा विवाद को बातचीत द्वारा शांतिपूर्ण तरीक़े से हल करने पर सहमत हैं। कई दौर की बातचीत हो चुकी है। आशा है कि यह विवाद निकट भविष्य में बातचीत से हल हो जाएगा।

चीनी हमले के दौरान समूचे देश ने अदभुत एकता और भाईचारे का प्रदर्शन किया। 1971 के भारत-पाक संघर्ष के दौरान भी ऐसी ही एकता, दृढ़ता और भाईचारा दिखाई दिया। लोग धर्म, भाषा, जात-पात और लिंग का अंतर भूलकर देश की एकता और अखंडता की रक्षा में जुट गएं।

देश की एकता का आधार हमारा संविधान है जो देश के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान मूल अधिकार प्रदान करता है। लोकतंत्र और धर्म निरपेक्षता इन अधिकारों की रक्षा करती है। भारत में अनेक धर्मावलंबी रहते हैं। जिनमें लगभग 80 प्रतिशत हिंदू हैं। यहां सभी धर्मावलंबियों को अपनी परंपरा, रीति और धर्मग्रंथों के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है।

लोग अपने धर्म का पालन करने के साथ अन्य धर्मों की मान्यताओं का आदर करते हैं। मुसलमान होली, दीवाली और दशहरा जैसे त्योहारों में उत्साह से भाग लेते हैं। कुछ हिंदू रोजा रखते हैं, ईद का त्योहार मनाते हैं। हिंदू अपने मुसलमान भाइयों को बधाई देते हैं। अन्य अल्पसंख्यक ईसाई, सिख, जैन और पारसी भी भारतीय समाज के अभिन्न अंग हैं।

असामाजिक तत्वों और कट्टरपंथियों की अवांछित कार्रवाइयों के कारण यदा-कदा देश में सांप्रदायिक दंगे हुए हैं। लेकिन देश की अधिकांश जनता का उनसे कोई लेना-देना नहीं होता है। देश की राजनीति, प्रशासन और समाज में मुसलमानों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। अब तक तीन मुसलमान राष्ट्रपति और दो उप राष्ट्रपति हुए हैं। मुसलमानों के प्रमुख संगठनों ने आतंकवाद की निंदा की हैं। उनका यह भी कहना है कि जिहाद का अर्थ आंतरिक संघर्ष है, जिसका उद्देश्य अधिक मानवीय बनना है।

देश में 17 प्रमुख भाषाएं हैं। सभी प्रमुख भाषाएं अपने-अपने राज्य में सरकारी काम-काज की भाषाएं हैं। साहित्य अकादमी, भारतीय ज्ञानपीठ, राइटर्स गिल्ड और अन्य साहित्यिक संस्थाएं सभी भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को सम्मानित करती हैं।

हिंदी का विरोध समाप्त हो गया है। अहिंदी भाषी राज्यों के लोग अपने बच्चों को मातृभाषा अंग्रेज़ी के साथ हिंदी पढ़ा रहे हैं। हिंदी, अहिंदी भाषी राज्यों में बोलचाल की प्रमुख संपर्क भाषा बनती जा रही है। हिंदी फ़िल्में, उनका संगीत और नृत्य देश के सभी भागों में लोकप्रिय हैं। अनेक लोग फ़िल्म देखकर हिंदी सीखते हैं। हिंदी संसद की प्रमुख भाषा है। कुछ राजनीतिज्ञ यह स्वीकार करते हैं कि राजनीति में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए अच्छी हिंदी जानना ज़रूरी है।

अंग्रेज़ी अब एक भारतीय भाषा हो गई है। सभी राज्यों और केंद्र में सरकारी काम-काज अंग्रेज़ी में होता है। आज देश में 1947 की अपेक्षा कहीं अधिक अंग्रेज़ी शिक्षा माध्यम वाले स्कूल हैं।

देश को आगे बढ़ाने में उसकी एकता मज़बूत बनाने में अखिल भारतीय सेवाओं, रक्षा सेवाओं का भी हाथ है। इन सेवाओं ने कानून व्यवस्था बनाए रखने, करों की वसूली करने से लेकर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने और पर्यावरण की रक्षा तक के काम बखूबी किए

हैं। हमारे रक्षा बलों ने राजनीतिक क्षेत्र में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। उसने हमेशा निर्वाचित सरकार के आदेशों का पालन किया। कभी किसी बड़े सैनिक अधिकारी ने सेवा काल के दौरान या बाद में राजनीतिक महत्वाकांक्षा प्रदर्शित नहीं कीं।

आम चुनाव देश का सबसे बड़ा पर्व है। देश में पंचायतों से लेकर संसद तक लगातार चुनाव हुए हैं। केवल आपात काल के दौरान ही चुनावों में देरी हुई थी। सभी लोग इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि चुनाव में भाग लेना ज़रूरी है क्योंकि उसके जरिये वे सरकार बनाने और उसकी नीतियों को प्रभावित करते हैं। 1952 में पहले चुनाव में 46 प्रतिशत मतदान हुआ था। अब 60 से 80 प्रतिशत तक मतदान होता है। औरतें भी चुनावों में आगे बढ़कर भाग लेती हैं। कश्मीर में आतंकवादियों ने और देश के अन्य भागों में माओवादियों ने चुनावों का बहिष्कार करने की अपील की। चुनावों में भाग लेने पर लोगों को मार देने की धमकी दी। लेकिन लोगों ने उनकी अपील और धमकी की उपेक्षा करते हुए चुनावों में भाग लिया है।

नब्बे के दशक में देश को विदेशी ऋण की समस्या का सामना करना पड़ा था। तब इसे अपना सोना विदेश भेजकर ऋण लेना पड़ा था। तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव और वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने इस स्थिति का सामना बड़ी सूझ-बूझ और साहस से किया। नरसिंह राव ने उद्योग मंत्री के रूप में लाइसेंस परमिट व्यवस्था को समाप्त किया। डॉ. सिंह ने आयात में कोटा परमिट समाप्त किया, सीमा शुल्क में कटौती की, निर्यात एवं पूंजी निवेश को बढ़ावा दिया और सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को रोका। इससे न केवल तत्कालीन आर्थिक संकट समाप्त हुआ बल्कि विकास दर में वृद्धि का रास्ता खुला।

आज भारत की गणना विश्व की प्रमुख आर्थिक शक्तियों में की जाती है। विश्व में सबसे अधिक इस्पात का उत्पादन करने वाला व्यक्ति भारतीय है। टाटा उद्योग समूह ब्रिटेन की बीमार कार कंपनियों को खरीद कर सही रास्ते पर ला रहे हैं। एक भारतीय उद्योग समूह ने दक्षिण कोरिया की एक बीमार औद्योगिक इकाई को खरीदा है। भारतीय कंपनियों ने अमरीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका में कई कंपनियों का अधिग्रहण किया है।

कृषि क्षेत्र में विकास के कारण देश न केवल खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया है बल्कि खाद्यान्नों का निर्यात करने लगा है। देश नक़दी फ़सलों– चाय, काफी, मसालों का प्रमुख निर्यातक है। औसत आयु और साक्षरता की दर बढ़ीं है। शिक्षा और चिकित्सा सुविधाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। औद्योगीकरण के कारण स्कूटर और मोटरगाड़ियां अब तत्काल मिलने लगे हैं जबकि पहले इनके लिए सालों और महीनों इंतज़ार करना पड़ता था। आज देश में लगभग 50 करोड़ मोबाइल फोन है। सेवा क्षेत्र का अभूतपूर्व विकास हुआ है। असमानता में कमी आई है। दलितों, जनजातियों और मुसलमानों की स्थिति में सुधार हुआ है। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

IGNITED MINDS
PHILOSOPHY

By- Amit Kumar Singh

2008 से संस्थान के स्थापना वर्ष स्थापना वर्ष से लेकर अब तक 2011 तक दर्शनशास्त्र में हिन्दी माध्यम में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाला एक भी विद्यार्थी हमारे संस्थान से बाहर का नहीं है।

विशाल मलानी- 378 अंक (2008 बैच)
कर्मवीर शर्मा- 371 अंक (2009 बैच)
अमर बहादुर- 377 अंक (2010 बैच)

प्रारम्भिक परीक्षा परिणाम के तुरंत बाद

दर्शनशास्त्र क्रैश कोर्स प्रारम्भ

कक्षा कार्यक्रम की जानकारी के लिए संस्थान से सम्पर्क करें

हमारा संस्थान सर्वश्रेष्ठ क्यो? क्योंकि

- ★ 'दर्शनशास्त्र का पर्याय' माने जाने का दावा करने वाले तथाकथित एक संस्थान के सैकड़ो अभ्यर्थी हमारे यहाँ दोबारा कोचिंल ले चुके हैं और इस सत्र में भी लगभग 40 से अधिक विद्यार्थी कोचिंग ले रहे हैं। इसकी प्रमाणिकता की परीक्षा के लिये आपका स्वागत है।
- ★ क्योंकि हम दर्शनशास्त्र के सबसे मुश्किल खण्डों को भी पढ़ाते हैं रटवाते नहीं।
- ★ प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न पत्र पर समान अधिकार से पढ़ाने वाले एकमात्र शिक्षक
- ★ कक्षा में पूछे गए सवालों का जवाब देते हैं। यह कहकर नहीं टालते कि ज्यादा पढ़ोगे तो डूब जाओगे।

पिछले वर्ष से लेकर इस वर्ष तक हिन्दी माध्यम में हमारे संस्थान से 325 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या 40 से भी अधिक है जिसका हमारे पास पर्याप्त प्रमाण है अतः इक्का-दुक्का दर्शनशास्त्र में प्राप्त अंक छापकर विज्ञापन करने वाले संस्थान की गुणवत्ता की समुचित परीक्षा करें।

संस्थान का मूल्यांकन करते समय इस तथ्य पर ध्यान रखना आवश्यक है कि 2008 के बाद बदले परीक्षा परिदृश्य में किस संस्थान के कितने विद्यार्थियों को विषय में 325 से अधिक अंक प्राप्त हुए।

संस्थान का मूल्यांकन दर्शनशास्त्र में प्राप्त अंक के आधार पर करिए ना कि रैंक के आधार पर। अंतर परखने के लिए हमारे कक्षा कार्यक्रम में आपका स्वागत है।

संस्थान से कुछ बेहतर अंक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी	
अमर बहादुर	377 अंक
शत्रुघ्न	361 अंक
संजय	359 अंक
हरिमोहन	358 अंक
भोला नाथ	357 अंक
पंकज दीक्षित	354 अंक
प्रवीन	348 अंक
विक्रम सिंहल	345 अंक
योगानन्द	343 अंक
शिवसहाय	343 अंक
वैभव	332 अंक
मिथलेश मिश्रा	328 अंक

2011 में संस्थान से सफल अभ्यर्थी	
गौरव सिंह	AIR 182
हेमन्त	AIR 283
कृष्णकांत	AIR 317
डॉ. प्रीति सिंह	AIR 328
देवानंद यादव	AIR 659
जितेंद्र कुमार मीणा	AIR 678
विजय कृष्ण यादव	AIR 704
अखलेश कुमार शर्मा	AIR 866

A -2, 1st Floor, Comm. Comp., Near Chawla Restaurant, Mukherjee Nagar

Mob. 9540131314

YH-89/2012

कला एवं संस्कृति का सुहाना सफ़र

● देव प्रकाश चौधरी

एडिडास के जूते, लिवाइस की जींस, नाइक की टोपी, रेबेन का चश्मा और कलर प्लस की टी शर्ट पहनने वाली आज की युवा पीढ़ी के लिए संस्कृति और कला का क्या मतलब है? जिस युग में वो जी रहे हैं, वहां हर चीज़ पाउच में मिलती है। ज़ाहिर है और आम राय भी यही है कि 'संस्कृति और कला को भी वो इसी अंदाज में ग्रहण कर रहे हैं।' लेकिन सचमुच ऐसा है क्या? अब आगे की पीढ़ी को देखें। एक ऐसी पीढ़ी, जिनकी चिंताएं अलग हैं। एक अलग ही दुनिया है उनकी। वे बालों के लिए हाथों के नाखुनों को रगड़ने और वजन घटाने के लिए पेट को सिकोड़ने के अलावा इस अबूझ फिक्र में घुले जा रहे हैं कि नयी पीढ़ी को जिम्मेदारी का अहसास ही नहीं। एक अरब से अधिक आबादी वाले इस देश में जहां लगभग हर विधा (राजनीति से लेकर साहित्य, संस्कृति और कला तक) में नेतृत्व विरासत में मिलता हो, वहां आखिर इस सवाल का क्या कोई मतलब है कि आज़ादी के 65 सालों बाद कला और संस्कृति के सफ़र में हम कहां तक पहुंचे?

वैसे भी संस्कृति शब्द को समझना आसान तो कभी नहीं रहा। महान सांस्कृतिक लेखक और विचारक रे विलियम्स ने जब यह कहा था कि कल्चर अंग्रेज़ी भाषा के दो या तीन सबसे जटिल शब्दों में से एक है, तब शायद समाज और हमारा परिवार इतना जटिल नहीं था। तब परिवार के सारे सदस्य एक साथ बैठकर वही खाते थे, जो घर में पकता था। वही पहनते थे, जो बड़े खरीद कर लाते थे। वही बोलते थे, जो बड़ों से और किताबों से सीखते थे। मगर आज, खाने के लिए पिज्जा और बर्गर की बड़ी-बड़ी कंपनियों के लुभावने वादे हैं, जो कहते हैं कि स्वाद से प्यार पनपता है। यही नहीं, चैन से पकाने-खाने वाले इस देश की रसोई में 'दो मिनट नुडल्स' का भी जलवा है। पहनने के लिए डिजायनर कंपनियों के डिस्कांउट ऑफर हैं और सिखाने के लिए इतने चैनल हैं कि रिमोट में नहीं समा रहे और तो और अब भरी हुई जेबों पर प्लास्टिक का एक टुकड़ा इस कदर रंग जमा चुका है कि खरीददारी के मायने ही बदल गए हैं। बहुत बाद में रवींद्रनाथ नाथ ठाकुर ने जब अंग्रेज़ी के कल्चर का अनुवाद संस्कृति के रूप में किया तो शायद तब भी हमारे परिवेश में, रहन-सहन में और लोक में इतनी जटिलताएं नहीं थीं। लेकिन क्या इससे हताश होने की जरूरत है? एकदम नहीं। मुश्किल यह है कि आज़ादी के 65 साल बाद भी हम अपने नज़रिये को नहीं बदल पा रहे हैं।

हक़ीक़त यह है कि हम अपनी संस्कृति को प्राचीन, एक किस्म से अचल और स्थिर मानने और महसूस करने के आदी हैं। लेकिन सच यह है कि यह हर पल बदल रही है। जब से दुनिया का भूगोल सिमटा है और एक किस्म से दुनिया को अपने मुट्ठी में कर लेने का भाव विकसित हुआ है, तब से दूसरी संस्कृतियों के परस्पर मेल-जोल से बदलाव की प्रक्रिया बेहद तेज़ हो गई है। पीछे मुड़कर देखें तो 19वीं सदी तक और कुछ मामलों में तो बीसवीं सदी में भी कलाएं जैसे कि संगीत, नृत्य, रंगमंच और इसी तरह से कुछ हुनर मसलन। बुनाई, चित्रकारी, काष्ठकला, राजगीरी और छापाकला को नीचे स्तर के लोगों का काम माना जाता था। तब कलाकारों के प्रति हमारे मन में सम्मान का कोई भाव नहीं था। ऊंचे तबके के लोग इसे हेय मानते थे। पर जब लोगों ने देखा कि अंग्रेज़ों के बड़े-बड़े अधिकारी इन कलाओं में दिलचस्पी लेते हैं तो लोगों का नज़रिया बदल गया। बिहार के मधुबनी जिले के एक गांव की सीता देवी समाज के लिए कला की देवी बन गई। कला जैसे ही भव्यता के साथ सामने आई, लोगों की सोच बदल गई। ऐसा कला की हर विधा के साथ हुआ।

1947 में आज़ादी मिलने से बहुत पहले तकनीक ने कला की हर विधा को लोगों के लिए सहज बना दिया था। याद कीजिए कि कैसे ग्रामोफोन रिकॉर्डों ने तब तक महलों और कोठों तक ही सीमित शास्त्रीय संगीत को आम आदमी के लिए उपलब्ध कर दिया था। आज़ादी के बाद रेडियो ने उसे घर-घर तक पहुंचाया। फिर सिनेमा की लोकप्रियता ने संगीत को और भी लोकप्रिय कर दिया। आम लोग और शास्त्रीयता के बीच जो एक दीवार थी, वो टूट-सी गई। आज हमारे देश में मोबाइल फोन की सुलभता ने संगीत को खेत में काम करने वाली महिलाओं तक पहुंचा दिया है और स्कूल जाने वाला कोई भी बच्चा हाथ में मोबाइल लेकर फोटोग्राफर बन सकता है। ये बदलते वक्त की कहानी है।

इस बात में कोई शक नहीं कि वर्ष 1947 के बाद से ही देश के हर बजट में कला, संस्कृति और मनोरंजन की उपेक्षा की गई। हम सड़कें बनाते रहें, पुल बनाते रहे। कंक्रीट का जंगल खड़ा कर लिया, लेकिन उस जंगल में कला के लिए कोई झोपड़ी बनाने की कोशिश

नहीं कीं। अगर कोशिश हुई भी तो इस तरह कि कला को सुदुर गांव से उठाकर राजधानी में खींचकर ले आओ। म्यूजियम में सजा दो। एक दो कंसर्ट हो जाए। मीडिया में ख़बरें आ जाएं, बस। फिर भी कला बची रही, खिलती रही, मुस्कुराती रही तो इसके पीछे लोक की ऊष्मा है और भारत के लोगों के धड़कते दिलों की उत्सवधर्मिता है।

आज भारत में दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक फ़िल्में बनती हैं। आज भारत में सर्वाधिक टीवी चैनल हैं। अख़बारों का सबसे बड़ा पाठक वर्ग और फ़िल्मों का सबसे बड़ा दर्शक वर्ग भी भारत में ही है। संगीत के प्रति भारतीयों की अभिरुचि विविधतापूर्ण है। समाचार-पत्र लगातार तरक्क़ी कर रहे हैं, किताबों की बिक्री बढ़ रही है, डिजिटल तकनीक नयी ऊंचाइयों को छू रही है। आज भारत में दुनिया के श्रेष्ठतम संगीतकार, फ़िल्मकार, लेखक, चित्रकार हैं तो इसका सीधा और साफ़ मतलब यह है कि तमाम अड़चनों के बावजूद कला और संस्कृति का सफ़र ठहर नहीं गया है। आज़ादी के बाद जो सफ़र शुरू हुआ था, वो मंजिल की तलाश में लगातार आगे बढ़ रहा है।

बात साठ के दशक की है। बंगाल के मशहूर चित्रकार यामिनी राय के दो चित्रों के लिए एक विदेशी खरीददार मुहमांगी क़ीमत देने को तैयार था, लेकिन पेंटिंग की क़ीमत बताने के लिए यामिनी राय की जुबान ही नहीं खुली। यह एक बड़े कलाकार का सहज संकोच था, जो अब धीरे-धीरे आत्मविश्वास का रूप धारण कर चुका है। लेकिन यह सब एक दिन में नहीं हुआ।

पहली बार, शायद 1893-94 में शिकागो में राजा रवि वर्मा के कुछ चित्रों की नुमाइश हुई, खूब सराही गई। ये चित्र पौराणिक-धार्मिक थे। उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली। भारतीय कला के इस उजाले ने आने वाली पीढ़ी को जो रोशनी दिखाई थी, उस रोशनी में कई कलाकार निकल पड़े। आज़ादी के बाद वैश्विक परिदृश्य पर ढ़ेर सारे भारतीय कलाकारों का नाम दमकने लगा।

राजा रवि वर्मा के बाद कलकत्ता के शांति निकेतन में गगेंद्रनाथ ठाकुर, रवींद्रनाथ ठाकुर, अवनींद्रनाथ ठाकुर से लेकर रामकिंकर बैज, नंदलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी जैसे कलाकार रचनारत थे। लेकिन तब तक मुंबई में कला का रंग खिल चुका था। मुंबई के प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप में एमएफ हुसैन, फ्रांसिस न्यूटन सूज़ा, सैयद हैदर रजा, सदानंद बाकरे और आरा अपनी पगडंडी बना रहे थे तो बडोदरा में कलाकारों ने अपनी रचनात्मकता से माहौल को उर्वर बना रखा था। जे. स्वामीनाथन, रामकुमार, तैयब मेहता भी अपनी राह पर दृढ़ता से चल रहे थे। भूपेन खक्खर, मनजीत बावा, जोगेन चौधरी, जतिन दास, केजी सुब्रमण्यम, रामेश्वर ब्रूटा ने अपने लिए नयी ज़मीन और नया आसमान तलाशा। चेन्नई से लेकर बडोदरा और कलकत्ता तक कलाकार अपनी कल्पनाशीलता के नये रंग बिखेर रहे थे। इसके अलावा हाल के दिनों में जिन कलाकारों ने अपनी एक अलग दुनिया बसायी है, उसमें अर्पणा कौर का नाम उल्लेखनीय है। सूफी अंदाज में जिंदगी जीते दिखती अर्पणा की कला की सादगी उन्हें दूसरों से अलग करती है। उनकी कबीर शृंखला, सोहनी महिवाल शृंखला और बुद्ध शृंखला को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कलाप्रेमियों ने पसंद किया। इसके अलावा हाल के दिनों में इंस्टालेशन के क्षेत्र में जिस नाम की सर्वाधिक चर्चा हुई है, वह नाम है- सुबोध गुप्ता का। कहना गलत नहीं होगा कि मकबूल फिदा हुसैन के बाद सुबोध गुप्ता दूसरे भारतीय कलाकार हैं, जिन्हें विदेशों में सबसे ज्यादा स्वीकार किया गया है। हाल के दौर का यह एक सुखद सच है कि भारतीय कला सीलते संग्रहालयों और गर्द खाते गोदामों से निकलकर वैश्विक गलियारों तक पहुंच चुकी है। खरीददार बेताब हैं और भारतीय कलाकारों का नाम आदर से लिया जा रहा है।

इस तरह की सांस्कृतिक सफलताओं के बावजूद कहीं न कहीं से यह स्वर तो उठता ही है कि देश एक किस्म के सांस्कृतिक पतन की ओर अग्रसर है। दिखावा हावी है। कला में भौंडे लोगों का बोलबाला है। लेकिन ऐसा कहने और सुनने की ज़रूरत क्यों है। वो शायद इसलिए कि हर महत्वपूर्ण प्रशासनिक और शैक्षणिक संस्थान राजधानी शहर में बनाने का असर यह हुआ है कि हमारे गांव और शहरों के बीच की दूरी बढ़ गई है। हमें लगता था कि सूचनाओं का जाल उस दूरी को कम करेगा, लेकिन इसके कुछ और नतीजे सामने आए। हमारी रोजमर्रा की जिंदगी से कंप्यूटर के सीधे जुड़ने का असर यह हुआ कि ग़रीब से ग़रीब लोगों ने भी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम वाले महंगे स्कूलों में भेजना शुरू कर दिया है। चिंता तो यह थी कि जिस तरह एक खास किस्म के मसाले के प्रचार ने पूरे देश का स्वाद एक कर दिया है, ठीक उसी तरह पूरे देश की भाषा एक हो जाएगी। वो तो भला हो सेटेलाइट चैनलों का। सेटेलाइट चैनल जब भारत में आए तो यह आशंका उठी कि अब मनोरंजन और ख़बरिया चैनलों का थोक भाव में भूमंडलीकरण हो जाएगा, पर ऐसा हुआ नहीं। पिछले कुछेक सालों में ज्यादातर नये चैनल क्षेत्रीय भाषाओं में शुरू हुए हैं, जिनसे इन भाषाओं को पूरी तरह से एक नयी ज़िंदगी मिली है। इसमें उन लोगों को काम मिला है जो इन भाषाओं में बोलते थे। लेकिन संस्कृति को लेकर हमारी चिंता बढ़ती रही। उसकी खास वजह तो शायद यह है कि आज का भारत जिस शहरी मध्यवर्ग में सांस लेता है, उस मध्यवर्ग में आशंकाएं ज़रूरत से ज्यादा डराती हैं। साथ ही खुद के सम्मान को लेकर डरावनी हद तक खौफ पसरा हुआ है। केबरे बालाओं, लेटनाइट बैंड्स और नाइट क्लबों को लेकर हम आज भी इतने त्रस्त और सशंकित नज़र आते हैं कि उसे देखकर एक सदी पहले में वापस लौट गया हो समाज, जहां सबके सिर पर नाच विरोधी उन्माद छाया हुआ था।

जिस देश में महान संगीत, महाकाव्यात्मक साहित्य, लोकनाट्य, कला और शिल्प की सदियों पुरानी परंपरा रही है, जिसमें हमारी संस्कृति समृद्ध हुई है, फिर भी आज जब हम किसी रियलिटी शो में महज छह साल के किसी लड़के को मूनवॉक करते देखते हैं तो कहने से नहीं चूकते कि देश की नयी पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति की अंधी नकल में आकंठ डूबी हुई है। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि वास्तव में यह हमारी महान सांस्कृतिक परंपरा का एक और गुणधर्म है कि वह सभी ज्ञात स्रोतों से कलात्मक पोषण ग्रहण करती है और अपने को और समृद्ध बना लेती है। आज़ादी के

बाद के 65 सालों में संगीत के सफ़र पर बात करें तो लता मंगेशकर, किशोरी अमोणकर, पंडित जसराज, पंडित रविशंकर, शिव कुमार शर्मा और हरि प्रसाद चौरसिया, जगजीत सिंह, शंकर एहसान लॉय और अनूप जलोटा जैसे दिग्गजों के योगदानों पर गर्व होता है। फिर भी ऐसे आरोप और बयान जब बार-बार सुनने को मिलता है कि आज का सांस्कृतिक संकट बड़ा डरावना है तो मुझे अपने पैत्रिक गांव की एक रात याद आ जाती है। मैं उस रात का जिक्र इसलिए करना चाहता हूं, ताकि आज़ादी के बाद हमारी संस्कृति और सांस्कृतिक संकट का सही चेहरा सामने आ जाए। नवरात्र की रात थी। व्यवस्थित और शिक्षित माने जाने वाले उस गांव में आगंतुकों की कतार थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। मानो झारखंड के गोड्डा जिले के मोतिया गांव की आबादी अचानक बढ़ गई हो। सिनेमा का गाना नहीं, झूमर और लोकगीत! बरसों बाद विशेषर शर्मा आया है। बेजोड़ गाता है बेटा भेल लोकी लेल बेटी भेल फेकी देल! क्या गला पाया है? गंजेड़ी है तो क्या हुआ? गुणी आदमी है। ढोलकिया भी खूब ताल देता है सब तरफ यही चर्चा। पड़ोस के गांव की औरतें भी दल बांध कर आ रही थीं। पढ़ी-लिखी औरतें भी थीं और ऐसे लोग भी, जो सेटेलाइट टीवी के आदी हो चुके थे। लोकधुन की बयार में रातभर सैकड़ों लोग बहते रहे और कब सुबह हो गई, पता नहीं चला। क्या इससे यह बात नहीं साबित होती कि तकनीकी विस्फोट और साधनों के लोकतंत्रीकरण ने मनोरंजन के नये मुहावरे ज़रूर गढ़े हैं, लेकिन लोक की ऊष्मा बची हुई है। लोगों की हथेली में सिमट चुकी इस दुनिया के शोर में भी कहीं न कहीं आपको उस जट की आवाज़ सुनाई देगी, जो कहता था- 'हम लाया आजन-बाजन तुम करो बियाह।' जटिन भी मनुहार करती है,-'जब-जब टिकवा मांगलियो रे जटवा, टिकवा काहे न लऔले रे।' मनोरंजन के साधनों का भले ही लोकतंत्रीकरण हो चुका हो और 20,000 करोड़ से ज्यादा के मनोरंजन उद्योग में इसका ढिंढोरा भी पीटा जा रहा हो कि मनोरंजन सार्वजनिक न हो कर व्यक्तिगत चीज़ है। लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि हमारे आमोद-प्रमोद के पुराने और परंपरागत तरीक़े ज़िंदगी से बाहर हो गए हैं। दिल्ली से देहरादून तक और कोलकाता से काशी तक की दुकानों में मेडोना और माइकल जैक्सन के सम्मोहन से मुक्त लोग बालेसर का गाया-'घोड़ली पर चमके पिया की पगड़िया सेजिया पर बिंदिया तोहार हो' जैसे गीतों को खोजने आ ही जाते हैं। पिया की जो छवि बालेसर सजाते हैं, उसे कोई भी कृतज्ञ समाज कैसे भूल सकता है। यही कृतज्ञता हमारी संस्कृति की सबसे बड़ी ताक़त है। मुझे इस बात को कहने में कोई संकोच नहीं है कि पिछले 65 सालों में हम संस्कृति के प्रति ज्यादा कृतज्ञ रहे हैं। संस्कृति और कला के सफ़र पर जब भी बात होती है, मुझे दोस्त कवि शहंशाह आलम की कुछ पंक्तियां याद आती हैं, उन पंक्तियों से गुज़रते हुए आप भी महसूस करेंगे कि हमारी रचनाधर्मिता कहां से ऑक्सीजन लेती है:

जब तक एक भी कुम्हार है
इस पूरी धरती पर
और मिट्टी आकार ले रही है
समझो कि
मंगलकामनाएं की जा रही हैं। ❑

(लेखक चित्रकार और संस्कृति के अध्येता हैं
ई-मेल : deop.choudhary@gmail.com)

केंद्र आयोजित करेगा स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल

केंद्र सरकार देशभर के विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में फ़िल्म की पढ़ाई कर रहे युवाओं के लिए एक 'स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल' का आयोजन करने वाली है। इसका मकसद देश में फ़िल्म संस्कृति का विकास करने के अलावा युवा फ़िल्मकारों को उनकी फ़िल्मों के लिए एक बड़ा मंच उपलब्ध कराना है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की पहल पर होने वाले इस महोत्सव को पुणे स्थित एफटीआईआई और कोलकाता स्थित सत्यजित राय फ़िल्म एवं टेलीविजन इंस्टीट्यूट आयोजित करेंगे। जिनके पास इस महोत्सव के आयोजन से संबंधित सभी जिम्मेदारियां होंगी। सूचना एवं प्रसारण सचिव उदय कुमार वर्मा ने कहा कि यह हर साल आयोजित होगा और इसके आयोजन की जिम्मेदारी ये दोनों सरकारी फ़िल्म प्रशिक्षण संस्थान बारी-बारी से उठाएंगे। योजना यह है कि इस महोत्सव के आयोजन के बजट को एक साल पुणे स्थित एफटीआईआई को दिया जाएगा तो दूसरे साल कोलकाता स्थित एसआर एफटीआईआई को।

दुनिया के कई शहरों में स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल का आयोजन होता है जिसमें फ़िल्म निर्माण का प्रशिक्षण ले रहे छात्रों को *अपनी डिप्लोमा फ़िल्मों के अलावा* पहली फ़िल्मों के प्रदर्शन का मौका मिलता है। पेरिस में 14 से 18 नवंबर को होने वाले यूरोपियन स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल, अमरीका के वर्जीनिया में होने वाला वर्जीनिया स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल, लंदन में हर साल होने वाला स्टूडेंट फ़िल्म फेस्टिवल कुछ ऐसे ही महोत्सव हैं जहां दुनियाभर के विद्यार्थी हिस्सा लेते हैं।

यह प्रस्तावित महोत्सव सिर्फ़ दोनों सरकारी फ़िल्म प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ रहे फ़िल्म के छात्रों के लिए ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि देशभर के निजी और सरकारी प्रशिक्षण संस्थानों में फ़िल्म निर्माण के गुर सीख रहे युवाओं की फ़िल्में भी इसमें हिस्सा ले सकेंगी।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने अपने विभिन्न सरकारी मीडिया विभागों (फ़िल्म समारोह निदेशालय, फिल्म्स डिवीजन, चिल्ड्रन फ़िल्म सोसायटी और राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम) द्वारा हर साल आयोजित किए जाने वाले विभिन्न फ़िल्म महोत्सवों को एक योजना में समाहित करने का फ़ैसला किया है जिसे 'भारत और भारत के बाहर फ़िल्म महोत्सव के जरिये भारतीय सिनेमा को बढ़ावा देने की योजना' कहा जाएगा। 12वीं पंचवर्षीय योजना में सूचना व प्रसारण मंत्रालय ने इस मद में 102 करोड़ रुपये और वर्ष 2012-13 के लिए 15 करोड़ रुपये ख़र्च करने की योजना बनाई है। ❑

भारत में प्राथमिक शिक्षा

● कौशलेंद्र प्रपन्न

विश्व के तकरीबन 150 देशों के नीति-नियंताओं ने डकार की सन् 2000 के घोषणा में स्वीकार किया है कि 0 से 6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चे हमारे भविष्य के लिए खास हैं। इसलिए ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट की मानें तो विश्व में आज 7.5 फ़ीसदी बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित हैं। उन्हें शिक्षित करने और शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए नीति-नियंताओं ने कई स्तरों पर पहलक़दमी की है। वह हमें नीति के स्तर पर तो दिखाई देती हैं साथ ही कार्ययोजनाओं और रणनीति के स्तर पर भी दिखाई दे सकती हैं। मसलन 'शिक्षा का अधिकार' का 2009 में कानून बनना। वहीं दूसरी ओर देश के हर राज्य में यह कानून लागू हो, इसकी समय सीमा मार्च 2013 तय की गई है। दिलचस्प बात यह है कि अब तक शिक्षा बाल केंद्रित नहीं है। आज़ादी के बाद कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, आचार्य रामामूर्ति पुनरीक्षा समिति, 1990 के साथ ही शिक्षा के लिए गठित अन्य समितियों को जिम्मेदारी सौंपी गई कि अब तक की शैक्षिक नीतियों, सिफ़ारिशों का पुनर्मूल्यांकन करें और सुझाव दें कि किस तरह से शिक्षा को बच्चों के सर्वांगीण विकास में मददगार बना सकते हैं। साथ ही स्कूल बीच में छोड़ देने वाले करोड़ों बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया कराई जा सके।

बच्चों की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और उनके अधिकारों की रक्षा करना हर देश, समाज और सरकार की जिम्मेदारी है। थाईलैंड के 'जिमेटियन घोषणा-पत्र, 1990' में तमाम देशों के नीति-नियंताओं ने घोषणा की कि 2000 तक शिक्षा और स्कूल से वंचित सभी बच्चों को शिक्षा उपलब्ध करा दी जाएगी। लेकिन जिस लक्ष्य को पाने के लिए नेताओं ने दस्तख़त किए थे वह लक्ष्य पूरा होता नहीं देख दोबारा 2000 में दक्षिण अफ्रीका के डकार में सभी वचनबद्ध नेताओं और नीति-नियंताओं की बैठक हुई, जिसे हम 'डकार डिक्लरेशन' के नाम से जानते हैं, संपन्न हुआ। डकार में विश्व के 150 देशों के नीति नियंता, राष्ट्राध्यक्षों, जिन्होंने घोषण-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे, की बैठक हुई और पाया गया कि अभी हम अपने लक्ष्य से काफी दूर हैं। सो दोबारा 2015 तक का लक्ष्य रखा गया तय किया गया कि इस समय सीमा में अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। जैसा कि पहले भी जिक्र किया जा चुका है कि 2015 का लक्ष्य पाने के लिए जिस तत्परता और रणनीति की आवश्यकता है वह अभी भी गायब है। हक़ीक़त यह है कि भारत सरकार ने अभी तक शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद के 6 फ़ीसदी दिए जाने की आवश्यकता को बजट में अपनी प्राथमिकता में शामिल नहीं किया है। यदि पिछले वर्षों के बजट पर नज़र डालें तो अभी शिक्षा को महज 3.5 फ़ीसदी ही दिया जा रहा है। देश के तमाम शैक्षिक सुधार की मुहिम से जुड़ी गैर-सरकारी संस्थाएं, नेशनल कोएलिएशन फॉर एजूकेशन, आरटीई फोरम एवं अन्य सिविल सोसायटी शिक्षा के लिए 6 फीसदी बजट को लेकर संघर्ष कर रही हैं। शिक्षा के अधिकार 2009, जुबिनाइल जस्टिस एक्ट, 2005 एवं चाइल्ड राइट कंवेंशन के होने के बावजूद हमारे समाज में बच्चे उपेक्षित हैं। बच्चों को एक स्वस्थ एवं उत्पादक नागरिक बनाने के लिए ज़रूरी है कि उन्हें प्रारंभ से ही उचित देखभाल, सुरक्षा एवं पालन-पोषण मिले। विभिन्न अध्ययन एवं शोध बताते हैं कि छह वर्ष तक की उम्र के बच्चों की देखभाल, सुरक्षा और पालन-पोषण पर दिया जाने वाला ध्यान ही सारी उम्र उसके व्यक्तित्व विकास एवं क्षमता पर असर डालता है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह आयु वर्ग अब भी नीतियों और कार्यक्रमों में हाशिए पर है।

गौरतलब है कि 2009 में पूरे देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू हुआ। यदि हम शिक्षा के अधिकार की संघर्ष यात्रा पर नज़र डालें तो पाएंगे कि 1882 में पहली बार ज्योतिराव फुले ने शिक्षा के अधिकार का प्रथम प्रयास भारतीय शिक्षा आयोग 'हंटर कमिशन' के सामने किया जोकि असफल रहा। लेकिन शिक्षा का अधिकार संघर्ष वहीं नहीं रुका बल्कि लंबी लड़ाई के बाद 2002 में 86वें संविधान संशोधन 21 ए के बाद 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा मौलिक अधिकार में शामिल हुआ। आगे चल कर 2009 में इस कानून को संसद के दोनों सदनों ने पारित किया और बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 बना। सन् 2010 की 1 अप्रैल से इसे पूरे देश में 3 वर्षों के दौरान यानी 31 मार्च, 2013 तक पूरी तरह से लागू करने की अधिसूचना जारी हुई।

शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 में बच्चों को मिली खास तवज्जो पर नज़र डालना वाजिब होगा क्योंकि इसी ज़मीन पर

बच्चों (0 से 6 आयु वर्ग को छोड़कर) 6 से 14 आयुवर्ग के बच्चों के भविष्य का खाक़ा बनाया गया है। नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत बच्चों के अधिकार इस प्रकार हैं :

- नि:शुल्क का तात्पर्य है बच्चों से किसी भी प्रकार का चंदा अथवा शुल्क नहीं लिया जाएगा ताकि उनकी स्कूली शिक्षा में बाधा न पड़े।
- अनिवार्य से तात्पर्य है- राज्य अथवा स्थानीय निकाय जो 40 की संख्या में बच्चों को एक किलोमीटर की परिधि में प्राथमिक और तीन किलोमीटर की परिधि में प्रारंभिक विद्यालय की व्यवस्था की जाएगी।
- 6 से 14 आयुवर्ग के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त है।
- सरकारी विद्यालयों की उपलब्धता न होने पर स्थानीय निकाय का दायित्व होगा कि वह सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालय में उनकी क्षमता के 25 फीसदी ग़रीब छात्रों का नामांकन कराएं।
- सहायताप्राप्त विद्यालयों की कमी होने पर गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में ग़रीब एवं विशेष श्रेणी के बच्चों को नामांकित किया जाएगा।
- गैर-नामांकित अथवा बीच में पढ़ाई छोड़कर जाने वाले बच्चों को उनकी उम्र के अनुसार कक्षाओं में दाखिला मिलेगा।
- कक्षा 1 से 8 वीं तक किसी भी बच्चे को अनुत्तीर्ण नहीं किया जाएगा।
- बच्चों को किसी भी प्रकार की प्रवेश परीक्षा, साक्षात्कार या प्रवेश शुल्क नहीं देना होगा।
- बच्चों को किसी भी प्रकार की मारपीट अथवा भेदभाव का शिकार होने से बचाया जाएगा।

शिक्षा के अधिकार कानून में कुछ जिम्मेदारियां शिक्षकों और स्थानीय निकायों को भी सौंपी गई हैं। राज्य सरकार एवं स्थानीय निकाय की जिम्मेदारी कुछ इस प्रकार से तय की गई है कि कानून लागू होने के 3 वर्ष के अंदर बच्चे के पड़ोस में विद्यालय की स्थापना करवाना, विकलांगता के शिकार बच्चों को इस कानून द्वारा दी गई सुविधाओं के अंतर्गत सुरक्षित शिक्षा की व्यवस्था करवाना और स्थानीय निकाय 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों का आंकड़ा रखेगा। वहीं दूसरी ओर विद्यालयों और शिक्षकों के कंधों पर भी जिम्मेदारी डाली गई है। बच्चों की उम्र का आकलन करने के लिए आंगनबाड़ी, एएनएम अथवा अभिभावक की घोषणा को साक्ष्य माना जाएगा।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 0 से 6 आयुवर्ग के 15 करोड़ 80 लाख बच्चे देश में हैं। वहीं 3 से 6 आयुवर्ग के बच्चों की संख्या 60 फीसदी हैं जो स्कूल से पूर्व की सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पातें। जबकि भारत के साथ ही विश्व के अन्य विकासशील देशों में भी 0 से 6 आयुवर्ग के बच्चों की स्थिति चिंताजनक है। वे बच्चे शिक्षा तो तब पाएंगे जब वो स्वस्थ हों, सुरक्षित रहें और स्कूल जाने के योग्य हो कड़वा सच है कि दुनिया में कुपोषित हर तीसरा बच्चा भारत में है। 50 फीसदी बच्चों की मौतें कुपोषण की वजह से होती हैं। 6 माह से 35 माह के बच्चों में प्रत्येक 10 में से 8 बच्चे एनीमिया (खून की कमी) से ग्रसित हैं। वहीं बाल मृत्युदर अभी भी 52.9 फीसदी है। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे बचे रहें और शिक्षित समाज के निर्माण में योगदान करें तो सबसे पहले हमें उन्हें स्वस्थ रखना होगा और असामयिक मौत से बचाना होगा।

तालिका

बच्चों से संबंधित कुछ आंकड़े

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	0 से 6 उम्र के कुल बच्चों की संख्या	15,87,89,287	13.12
2	0 से 6 साल के उम्र के लड़के	8,29,52,135	13.12
3	0 से 6 साल के उम्र की लड़कियां	7,58,37,152	12.93
4	0 से 14 साल के उम्र के कुल बच्चे	35,95,64,222	30.8

विकास का पहिया तेज़ी से घूम रहा है। तकनीकी और आईटी की दौड़ में शिक्षा को शामिल तो कर लिया गया लेकिन इस तथ्य को नज़रअंदाज कर दिया गया कि वास्तव में शिक्षा अभी तकनीकी व वर्तमान रफ़्तार में क़दमताल मिलाने में सक्षम नहीं है। बुनियादी शिक्षा और बच्चों को नज़रअंदाज कर सबके लिए शिक्षा (ईएफए) के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि शिक्षा को मिलने वाले वार्षिक बजट को देखें तो पाएंगे कि सर्वशिक्षा अभियान और मिड डे मील को जितना बजट आवंटित किया जाता है वह पर्याप्त नहीं है।

एक गैर-सरकारी संस्था नेशनल कोएलिएशन फार एजूकेशन (एनसीई) जो भारत में ग्लोबल कंपेन फॉर एजूकेशन (जीसीई) का प्रतिनिधि है, ने हाल ही में 2011 की जनगणना को आधार बना कर स्कोर कार्ड प्रकाशित किया है। इस स्कोर कार्ड में राज्यवार प्राथमिक शिक्षा की स्थिति पर रोशनी डाली गई है। राज्यों में पुरुष-महिला साक्षारता से लेकर लड़की/ लड़का की स्कूलों में उपस्थिति और स्कूल बीच में छोड़कर जाने वालों की संख्या पर भी रोशनी डाली गई है। एक कक्षा में शिक्षक/छात्र अनुपात की दृष्टि से राज्यवार आंकड़े उपलब्ध हैं। आरटीई की रोशनी में देखें तो छात्र-शिक्षक अनुपात 35 : 1 बताई गई है। वहीं किन राज्यों में बच्चियों की प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन है इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

आज़ादी के छह दशक बीत जाने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में जिस प्रकार की गति की उम्मीद थी वह पूरी नहीं हुई। ख़ासकर प्राथमिक शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। क्योंकि यह न केवल शिक्षकों की कमी से जूझ रही है, बल्कि गुणवत्ता की कसौटी पर भी प्राथमिक शिक्षा पिछड़ी नज़र आती है। इसके कारणों की जद्द में जाएं तो राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ ही सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों की अहम् भूमिका नज़र आएगी। 2015 तक सब के लिए शिक्षा का लक्ष्य हासिल हो सके इसके लिए 2011 में (इएफए) का नाम बदल कर फास्ट टैक ऑफ इनिसिएटिव (एफटीआई) रखा गया है। क्योंकि यदि हम चाहते हैं कि तय समय-सीमा में लक्ष्य प्राप्त कर सकें तो हमें अपनी रणनीतियों, योजनाओं, कार्ययोजनाओं आदि में परिवर्तन करने होंगे। ❑

(लेखक दिल्ली स्थित स्वयंसेवी संगठन सेव द चिल्ड्रेन में कंसल्टेंट हैं।

ई-मेल : kprapanna@gmail.com)

महिला सशक्तीकरण की बेजोड़ मिसाल है: लद्दाख

● पदमा डेचिन

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार, भारत महिलाओं के लिए सबसे ख़तरनाक देशों की श्रेणी में एक है। हाल के दिनों में देश की राजधानी दिल्ली समेत कई राज्यों में महिलाओं के साथ बढ़ रहे अपराध की ख़बरें पढ़ने के बाद इस रिपोर्ट की सच्चाई पर बहुत हद तक विश्वास करने का मन हो जाता है। देश में लिंग विषमता आम बात हो चली है। ताज्जुब तो तब होता है जब यह विषमता गांव से ज़्यादा शहरों में देखने को मिलते हैं अर्थात गांव से ज़्यादा शहरों के पढ़े-लिखे लोगों में लड़के और लड़कियों के बीच विभेद की भावना नज़र आती है। अपने स्कूली तथा कॉलेज की शिक्षा के दौरान मैंने कई बार परंपरा के नाम पर महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के बारे में पढ़ा और जब उच्च शिक्षा के लिए मुझे लद्दाख से बाहर निकलने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने जाना कि देश में महिलाओं को दहेज तथा लड़की को जन्म देने के नाम पर किस प्रकार प्रताड़ित किया जाता है। इस परिदृश्य ने मुझे लद्दाखी महिलाओं की स्थिति पर लिखने को प्रेरित किया ताकि देश के अन्य क्षेत्रों की महिलाएं यह जाने कि किस प्रकार लद्दाख इस घृणित परंपरा की काली छाया से अब तक कोसों दूर है।

एक महिला होने के नाते मैं यह पूरे दावे के साथ कह सकती हूं कि लद्दाख में लड़कियों को समाज में वहीं रुतबा और दर्ज़ा प्राप्त है जो लड़कों को प्राप्त है। इनके लिए भी शिक्षा और विकास का वही पैमाना है जो लड़कों के लिए तय किए गए हैं। अन्य क्षेत्रों के विपरीत लद्दाख में लड़कों की तरह लड़कियों के जन्म पर मातम की बजाय उत्सव का माहौल रहता है। माता-पिता केवल लिंग के आधार पर उनके साथ किसी प्रकार का विरोधाभासी व्यवहार नहीं करते हैं। यहां लड़कियों को जन्म से लेकर उसकी शादी तक अभिभावक लड़कों की तरह समान अवसर प्रदान करते हैं और शादी के बाद ससुराल में भी उसे इज्ज़त दी जाती है। लड़कियों को कभी इस बात का अहसास नहीं होने दिया जाता है कि वह किसी प्रकार से किसी मामले में लड़कों से कम हैं अथवा कमज़ोर हैं। स्कूल, कॉलेज यहां तक कि सामाजिक कार्यों में भी उन्हें समान अवसर प्रदान किए जाते हैं। उनकी सामाजिक स्थिति से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाता है। लड़कों की तरह उन्हें भी समाज में फलने-फूलने का समान अवसर दिया जाता है। शादी के नाम पर न तो लड़के वालों की ओर से दहेज की लंबी-चौड़ी फेहरिस्त दी जाती है, न ही दुल्हन को दहेज की कमी के लिए कोसा जाता है और न ही दहेज के नाम पर उनकी बलि दी जाती है। यहां लड़कियों की शादी ज़बरदस्ती नहीं कराई जाती है बल्कि उन्हें इस बारे में सोचने और फ़ैसला लेने का पूरा अधिकार प्राप्त है। लद्दाखी समाज में लड़कियों को अपने पसंद का जीवनसाथी चुनने की आज़ादी है तथा अपने भविष्य का फ़ैसला करने में समाज की सहमति होती है। इसका प्रमुख कारण यही है कि लद्दाखी समाज में लड़कियों के दर्ज़े को हमेशा लड़कों के समान समझा जाता रहा है।

इसी प्रकार बुजुर्ग तथा उम्रदराज़ महिलाओं को विभिन्न अवसरों पर बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते देखा जा सकता है। सामाजिक विकास में लद्दाखी महिलाएं पुरुषों के साथ समान रूप से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती हैं। पुरुष जहां खेती और अन्य कार्य करते हैं वहीं महिलाएं भी खाली वक़्त का पूरा उपयोग करती हैं। यहां के अधिकतर गांवों में महिला स्वयं सहायता समूह सक्रिय रूप से कार्यरत हैं जहां वह सिलाई, कढ़ाई, बुनाई तथा बागबानी जैसे कार्यों को बखूबी अंजाम देती हैं। जो न सिर्फ़ उनके हुनर को निखारने का कार्य करता है बल्कि इससे घर की आय में भी विशेष योगदान होता है। सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में जब भी आवश्यकता पड़ी है लद्दाखी महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया है।

मुमकिन है कि कुछ जगह लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता होगा क्योंकि महिलाओं के साथ अत्याचार एक वैश्विक समस्या का रूप धारण कर चुका है। परंतु बावजूद इसके यहां महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के इक्का-दुक्का मामले ही सामने आते हैं। वहां बलात्कार, हत्या अथवा छेड़खानी के मामले वर्षों में कहीं एक बार सुनने को मिलते हैं। हालांकि यहां दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों की तरह पुलिस चौकसी का कोई विशेष प्रबंध नहीं है बावजूद इसके यहां देश के अन्य महानगरों की तरह महिलाओं पर अत्याचार की संख्या नगण्य है। इसके पीछे यहां की उन्नत सामाजिक विचारधारा कार्य करती है। यहां का समाज विकृत मानसिकता को कभी भी स्वीकार्य नहीं करता है। यही कारण है कि लद्दाखी युवाओं में महिलाओं के प्रति सम्मान की भावना होती है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि हमारे देश में महिलाओं का स्थान सदैव ऊंचा रहा है, उसे देवी के समान पूजनीय माना जाता है। परंतु बदलते वक़्त में यह बात केवल क़िताबों तक ही सीमित रह गई है और आज स्थिति इसके विपरीत है। लेकिन दूसरी ओर देश के इस दूर-दराज़ क्षेत्र लद्दाख में अब भी महिलाओं का स्थान समाज में आदरणीय है। ❑

(चरखा फीचर्स)

श्रद्धांजलि

आनंद के सफ़र का अंत

हिंदी सिनेमा के पहले सुपर स्टार और एक दौर में रूमानियत के मदहोश रंग बिखेरने वाले अदाकार राजेश खन्ना की ज़िंदगी का सफ़र गत 18 जुलाई को खत्म हो गया। कई दिनों तक मुंबई के अस्पताल में असाध्य बीमारी से जूझते हुए 69 साल की अवस्था में उन्होंने अपने निवास आशीर्वाद में अंतिम सांस ली। फ़िल्मी दुनिया में 'काका' के नाम से लोकप्रिय इस अभिनेता के निधन पर देश की प्रमुख हस्तियों ने शोक संवेदना जताई है।

20 दिसंबर, 1942 को अमृतसर में जन्मे राजेश खन्ना का असली नाम जतिन खन्ना था। साठ के दशक में जब उन्होंने फ़िल्मों की ओर रुख किया तो उनके चाचा ने उनका नाम बदल कर राजेश कर दिया और बाद में इसी नाम से वे फ़िल्मी दुनिया के फ़लक पर छा गए। 1966 में चेतन आनंद की फ़िल्म *आखिरी ख़त* से उनका फ़िल्मी सफ़र शुरू हुआ। लेकिन एक साल बाद रवींद्र दवे की फ़िल्म *राज* में वे पहली बार प्रमुख किरदार के तौर पर आए और अपनी पहचान कायम की। उनकी पहली नायिका बबीता थीं। *औरत, डोली, इत्तफ़ाक* जैसी फ़िल्में उनकी कामयाबी की भूमिका लिखने वाली थीं। असल में पहले सुपर स्टार की मंजिल की ओर क़दम उन्होंने 1969 की सुपरहिट फिल्म *अराधना* से बढ़ाया। शर्मिला टैगोर के साथ अपने भावप्रवण अभिनय से उन्होंने तब की पीढ़ी पर ऐसा रुमानी नशा भरा, जो फ़िल्मी तारीख़ में सुनहरे दौर के रूप में दर्ज़ है। उनकी यह भी ख़ास बात है कि वे सबसे लंबे समय तक कामयाबी के मोर्चे पर डटे रहने वाले नायक थे। राजेश खन्ना ने 1969 से 1972 के बीच लगातार 15 सुपरहिट फ़िल्में दीं। इन फ़िल्मों में *आराधना, हाथी मेरे साथी, आनंद* और *अमर प्रेम* शामिल हैं। अपनी चार दशक की सक्रिय अभिनय यात्रा में उन्होंने 180 से अधिक फ़िल्मों में अभिनय किया और हाल में हैवेल्स के एक विज्ञापन में उन्होंने अपनी ढली हुई रंगत दर्शकों को दिखाई।

राजेश खन्ना हालांकि एक रोमांटिक अभिनेता थे, बावजूद इसके उन्होंने बॉलीवुड में चार दशक के अपने शानदार पारी के दौरान विविध भूमिकाएं बहुत सहजता से निभाई। ऋषिकेश मुखर्जी की फ़िल्म *आनंद* (1971) में एक कैंसर मरीज की उनकी भूमिका को बहुत सराहा गया। फ़िल्म में उनकी भूमिका देखकर कई लोगों की आंखें नम हो गई थीं। फ़िल्म *अवतार* के पिता और रामअवतार में मौकापरस्त सियासतदां की भूमिका को कौन भूल सकता है।

राजेश खन्ना की यादगार फ़िल्मों में *ख़ामोशी, सफ़र, हाथी मेरे साथी, अंदाज, मर्यादा, आन मिलो सजना, दो रास्ते, आपकी क़सम, रोटी, प्रेम कहानी, महबूबा, कटी पतंग, महाचोर, कर्म, फिर वही रात, बंडलबाज,*

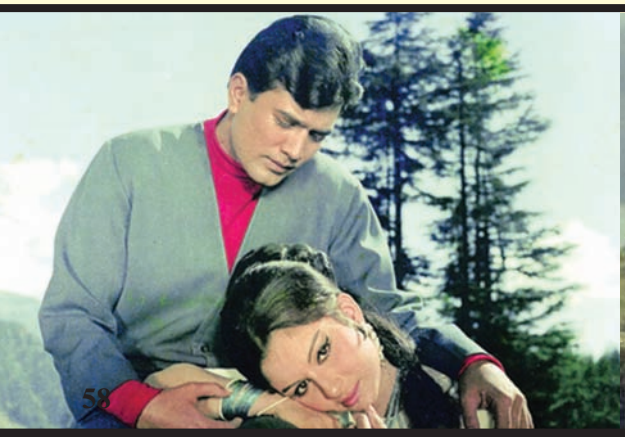

त्याग, पलकों की छाव में, नौकरी, चक्रव्यूह, अनुरोध, छैला बाबू, अमरदीप, बंदिश, थोड़ी सी बेवफाई, आज का एमएलए, कुदरत, धनवान, इंसाफ मैं करूंगा, अनोखा रिश्ता, स्वर्ग आदि का नाम लिया जाता है। राजनीति में आने के पहले 1990 में राजेश खन्ना की मुख्य भूमिका वाली फ़िल्म *स्वर्ग* थी। राजेश खन्ना तीन बार श्रेष्ठ अभिनेता के फ़िल्म फेयर अवार्ड से नवाजे गए। चौदह बार इस पुरस्कार के लिए उनका नाम भेजा गया था। 2005 में उन्हें फ़िल्म फेयर लाइफ टाइम एचीवमेंट पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस अवसर पर अपने संबोधन में राजेश खन्ना ने शायराना अंदाज में कहा था कि ''शोहरत और चाहत आती-जाती रहती है। लोग भी आते-जाते रहते हैं।'' फ़िल्मी सफ़र के विराम के बीच ही उन्होंने सियासत का दामन थामा था और वे सांसद बने पर असल जीवन में उन पर अभिनय ही छाया रहा। वे अभिनय को ही जीते रहे।

राजेश खन्ना के निधन की ख़बर ने फ़िल्मी दुनिया से लेकर कला और राजनीति जगत में शोक की लहर दौड़ गई। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी, भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी के अलावा विभिन्न प्रदेशों के मुख्य मंत्रियों ने उनके निधन पर गहरा दुख जताया है। प्रधानमंत्री ने अपने शोक संदेश में कहा, ''मैं राजेश खन्ना के शोक संतप्त परिवार के सदस्यों और उनके अनगिनत प्रशंसकों के प्रति अपनी गहरी संवेदना जताता हूं।'' वरिष्ठ भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी ने शोक व्यक्त करते हुए उन्हें 'बंबई सिनेमा का लीडिंग स्टार' बताया।

स्वर कोकिला लता मंगेशकर ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि ''उनकी कमी हमेशा खलेगी।'' काका के साथ फ़िल्म *अवतार* समेत 10 फ़िल्मों में काम कर चुकी अभिनेत्री शबाना आजमी ने ट्विटर पर लिखा, वे 'सुपरस्टार' थे और उनके जैसा कोई नहीं। फ़िल्म अभिनेता अमिताभ बच्चन ने उन्हें बेहतर अभिनेता और उम्दा इंसान बताया और पुराने दौर को याद किया। गायक मन्ना डे ने काका को याद करते हुए कहा कि उनका गीत 'ज़िंदगी कैसी है पहेली' जब तक गाया जाता रहेगा, राजेश खन्ना याद आते रहेंगे।

सरहद पार से भी राजेश खन्ना के निधन पर शोक संवेदना आई है। मेहदी हसन के बेटे कामरान ने कराची से कहा ''राजेश खन्ना जैसे कलाकार बरसों में एक बार पैदा होते हैं।'' ❑

कलयुग के हनुमान नहीं रहें

रुस्तम-ए-हिंद दारा सिंह का गत 12 जुलाई को निधन हो गया। वे 83 बरस के थे। दारा सिंह ने दो शादियां की थीं। पहली पत्नी से एक बेटा और दूसरी से पांच बच्चे हैं।

दारा सिंह का जन्म अमृतसर के पास धरमूचक में हुआ था। उनके बड़े भाई का नाम रंधावा था। दोनों भाइयों को बचपन से ही कसरत का शौक था। वे रोज़ अखाड़े में जाते थे और कहा जाता है कि सौ बादाम, दूध-मक्खन के साथ रोज खाते थे। लेकिन पिता नहीं चाहते थे कि उनका बेटा पहलवान बने। पिता का मानना था कि पहलवानों के अंतिम दिन बेहद परेशानी में गुजरते हैं। दारा सिंह के चाचा ने बढ़ावा दिया और दोनों भाइयों को पहलवान बनाया।

1947 में दारा सिंह सिंगापुर आ गए। वहां रहते हुए उन्होंने भारतीय स्टाइल की कुश्ती में मलेशियाई चैंपियन तरलोक सिंह को पराजित कर कुआलालंपुर में मलेशियाई कुश्ती चैंपियनशिप जीती। एक पेशेवर पहलवान के रूप में सभी देशों में अपनी धाक जमाकर वे 1952 में भारत लौट आए। 1954 में वे भारतीय कुश्ती चैंपियन बने।

उसके बाद उन्होंने कॉमनवेल्थ देशों का दौरा किया और विश्व चैंपियन किंगकांग को परास्त कर दिया। बाद में उन्हें कनाडा और न्यूजीलैंड के पहलवानों से खुली चुनौती मिली। जिसका जवाब उन्होंने 1959 में कलकता में हुई कॉमनवेल्थ कुश्ती चैंपियनशिप में कनाडा के चैंपियन जॉर्ज गार्डियान्को एवं न्यूजीलैंड के जॉन डिसिल्वा को धूल चटा दिया। 29 मई, 1968 को अमरीका के विश्व चैंपियन लाऊ थेज को पराजित कर फ्री-स्टाइल कुश्ती के विश्व चैंपियन बन गए। 1983 में उन्होंने अपराजेय पहलवान के रूप में कुश्ती से संन्यास ले लिया। दारा सिंह सिर्फ़ पहलवान नहीं थे वे एक उम्दा कलाकार भी थे।

हिंदी सिनेमा में 1962 भले ही *साहब बीवी और गुलाम* के लिए याद किया जाता हो लेकिन वास्तव में 1962 में आई किसी फिल्म ने यदि हिंदी सिनेमा का स्वभाव बदल दिया तो वह फ़िल्म थी, दारा सिंह की *किंग कांग*। *किंग कांग* 50 के दशक में विश्व चैंपियन पहलवान थे, जिन्हें दारा सिंह ने अखाड़े में पटकनी देकर फ्री-स्टाइल कुश्ती में भारतीय वर्चस्व को स्थापित किया था। फ़िल्म की पूर्वपीठिका भी यही थी, ज़ाहिर है दारा सिंह नायक की भूमिका में थे। दारा सिंह अपने सक्रिय जीवन में ही किवदंती बन गए थे। दारा सिंह भारतीय ताक़त के पर्याय के रूप में स्वीकार कर लिए गए। शायद इसलिए 60 वर्ष से ऊपर की उम्र में टेलीविजन धारावाहिक *रामायण* में हनुमान की भूमिका उन्होंने इस तरह निभाई कि लोगों के दिलों में वे हनुमान के प्रतीक रूप में बस गए। 2003-09 तक वे सांसद भी रहे। लेकिन इन तमाम पहचानों के बावजूद दारा सिंह हिंदी सिनेमा के एकमात्र अभिनेता रहे जिन्होंने अपनी मूल पहचान कभी नहीं खोई। उनकी सार्वजनिक पहचान पहलवान की थी और आजीवन उन्होंने उस पहचान का सम्मान किया। ❑

(संकलन : वी.एम. वनोल)

ओलंपिक खेलों में भारत

● योगेश चंद्र शर्मा

आधुनिक ओलंपिक खेलों की शुरुआत 1896 ईस्वी में प्रारंभ हुई थी। उस प्रथम आयोजन में भारत का कोई खिलाड़ी शामिल नहीं हो पाया था। अगला आयोजन 1900 में जब पेरिस में हुआ तो उसमें अवश्य ही एक भारतीय खिलाड़ी ने व्यक्तिगत स्तर पर भाग लिया और 200 मीटर की दौड़ में उसने रजत पदक भी प्राप्त किया। वह खिलाड़ी था एक एंग्लो इंडियन, नार्मन प्रिटचार्ड। इसके बाद ओलंपिक खेलों में या भारत की खेल संबंधी अन्य गतिविधियों में भी नार्मन प्रिटचार्ड का नाम कहीं पढ़ने-सुनने को नहीं मिला। अनुमानतः खेलना छोड़ वह इंग्लैंड में जा बसें।

1900 के पेरिस आयोजन के बाद 20 वर्षों तक भारत का कोई खिलाड़ी ओलंपिक खेलों में शामिल नहीं हुआ। भारत की तत्कालीन अंग्रेज़ी सरकार की सामान्य नीति भारतीयों को खेल या अन्य किसी भी क्षेत्र में उभरकर सामने लाने की नहीं थी। यदि व्यक्तिगत स्तर पर कोई भारतीय खिलाड़ी इसके लिए प्रयत्न करता तो उसके सामने आर्थिक समस्या खड़ी होती। खेलों की व्यवस्था और इस प्रकार की खेल प्रतियोगिताओं में खिलाड़ी भेजने के लिए कोई उपयुक्त संगठन भी उन दिनों हमारे यहां नहीं था। 1920 में जब एंटवर्प (बेल्ज़ियम) में ओलंपिक खेलों का आयोजन हुआ तो उसमें मुंबई के उद्योगपति दोराब जी टाटा की आर्थिक सहायता से हमारे छह खिलाड़ियों के दल ने भाग लिया, जिसमें चार एथलीट और दो पहलवान थे। खिलाड़ियों का प्रदर्शन संतोषजनक रहा, किंतु पदक प्राप्त करने की सीमा तक उनमें से कोई नहीं पहुंच पाया। इसके उपरांत 1924 के पेरिस ओलंपिक में भारतीय खिलाड़ियों की संख्या आठ हो गई, किंतु इस बार भी पदक किसी को भी प्राप्त नहीं हो सका। खिलाड़ियों का संपूर्ण व्यय 1924 में भी उद्योगपति दोराब जी टाटा ने ही उठाया।

खेलों के प्रति दोराब जी टाटा की विशेष रुचि को देखते हुए, अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति ने उन्हें 1920 में ही अपना सदस्य बना लिया था। इसके बाद उन्हीं के प्रयत्नों से 1927 में भारत में प्रथम भारतीय ओलंपिक समिति बनी और उसे अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति की मान्यता भी प्राप्त हुई। तदनुसार भारत अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति का पूर्ण सदस्य बन गया। इस प्रकार 1928 के एम्सटर्डम ओलंपिक में हमारे खिलाड़ियों की जो टीम गई, वह भारत की प्रथम अधिकृत और मान्यताप्राप्त टीम थी। इसमें हॉकी टीम के अतिरिक्त सात एथलीट भी शामिल थे। इस ओलंपिक में लंबी कूद में भारत ने आठवां स्थान प्राप्त किया और हॉकी के मैदान में यहां पर भारत ने अपना प्रथम ओलंपिक स्वर्ण पदक प्राप्त किया। भारत की ओर से इस खेल में ध्यानचंद, पटौदी, पिंजर, नोरिस, गेटले और हेमंड ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की।

1932 के लास एंजिल्स ओलंपिक में भारत की हॉकी टीम ने जापान और अमरीका की शक्तिशाली टीमों को क्रमशः 11-0 तथा 24-0 से हराकर हॉकी में अपना अद्वितीय स्थान बना लिया। त्रिकूद के अतिरिक्त भारत यहां भी किसी एथलेटिक प्रतियोगिता में उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाया। त्रिकूद में भी भारत ने 14वां स्थान प्राप्त किया। 1936 के बर्लिन ओलंपिक में भारत ने लगातार हॉकी में तीसरी बार स्वर्ण पदक जीतकर अपने विशिष्ट स्थान को कायम रखा। इस मैच में ध्यानचंद ने अपनी विशेष प्रतिभा को प्रमाणित किया, जिससे आगे चलकर उन्हें 'हॉकी का जादूगर' कहा जाने लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण 1940 और 1944 में ओलंपिक खेल नहीं हुए थे। इसके बाद 1948 के लंदन ओलंपिक में भारत के खिलाड़ियों ने पहली बार स्वतंत्र देश के नागरिक के रूप में भाग लिया। फुटबॉल में हमारी टीम पहली बार शामिल हुई। फुटबॉल के अतिरिक्त हॉकी, एथलेटिक्स, तैराकी, बॉक्सिंग, कुश्ती, भारोत्तोलन और साइकिलिंग में भी भारत के खिलाड़ियों ने भाग लिया। लेकिन हॉकी के अतिरिक्त लगभग अन्य सभी खेलों में हमारा प्रदर्शन निराशाजनक रहा। हॉकी में भारत ने स्वर्ण पदक प्राप्त करने की अपनी परंपरा को अवश्य कायम रखा, किंतु यहां भी उपलब्धि बहुत शानदार नहीं रही। फाइनल मैच में भारत, इंग्लैंड पर केवल 1-0 से ही विजय प्राप्त कर सका।

1952 का ओलंपिक हेलसिंकी में आयोजित हुआ। हॉकी में स्वर्ण पदक जीतने का गौरव इस बार भी भारत के पास अक्षुण्ण रहा। इसके अतिरिक्त अन्य उपलब्धि के रूप में कुश्ती को लिया जा सकता है। इस बार हमारे पहलवानों का प्रदर्शन पहले की अपेक्षा अच्छा रहा और भारत के खाशाबा जादव ने हमें कांस्य पदक दिलवाया। इस बार दो महिलाओं ने भी भारत की ओर से ओलंपिक में भाग लिया, किंतु उनकी उपलब्धि उल्लेखनीय नहीं रही।

1956 के मेलबोर्न ओलंपिक में भारत की

फुटबॉल टीम का प्रदर्शन उल्लेखनीय रहा। वह सेमीफाइनल तक पहुंची और चौथा स्थान प्राप्त किया। पहलवानों का प्रदर्शन निराशाजनक रहा। हॉकी के अतिरिक्त अन्य खेलों की भी यही स्थिति रही। हॉकी में हमने पुनः स्वर्ण पदक प्राप्त किया, किंतु इस बार हमें जर्मनी और पाकिस्तान की टीम से कड़ा मुक़ाबला करना पड़ा। यह हमारे लिए इस बात की चेतावनी थी कि अब विश्व के अन्य देश भी हॉकी में प्रगति कर रहे हैं और इसलिए हमें भी इस दिशा में विशेष तैयारी की आवश्यकता है। किंतु हमारे हॉकी खिलाड़ियों और व्यवस्थापकों ने उस चेतावनी की तरफ ध्यान नहीं दिया, जिसका नतीज़ा यह हुआ कि 1960 के रोम ओलंपिक में, हॉकी पर बना हुआ हमारा पिछले 32 वर्ष का एकाधिकार समाप्त हो गया। स्वर्ण पदक पाकिस्तान ने हथिया लिया और हमें चांदी से ही संतोष करना पड़ा।

1964 के टोकियो ओलंपिक में भारत ने हॉकी में पाकिस्तान को 1-0 से हराकर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर ली। फिर भी खेले गए मैचों में लगभग हर क़दम पर भारत की गिरती हुई क्षमता का बराबर अहसास हो रहा था। अन्य खेलों में हमारी कहीं कोई उपलब्धि नहीं रही। 1968 के मैक्सिको ओलंपिक में भारत को उस समय एक और धक्का लगा जब हॉकी का स्वर्ण पदक पाकिस्तान को मिला और रजत पदक ऑस्ट्रेलिया को। भारत के हिस्से में केवल कांस्य पदक आ पाया। इसके बाद 1972 के म्यूनिच ओलंपिक में भी हॉकी में भारत को कांस्य पदक से ही संतोष करना पड़ा। इस बार स्वर्ण पदक पं. जर्मनी को मिला और रजत पाकिस्तान को। अन्य खेलों में भी हमारी स्थिति यथावत निराशाजनक रही।

1976 के मांट्रीयल ओलंपिक में हॉकी के मैदान पर भारत की रही-सही प्रतिष्ठा की भी धज्जियां उड़ गई। यहां पर भारत हॉकी में सातवें नंबर पर जा पहुंचा और 1976 की ओलंपिक पदक-सूची में भारत का नाम गायब रहा। 1980 के मास्को ओलंपिक में भारत ने हॉकी के अपने पुराने स्वर्ण पदक को पुनः प्राप्त कर लिया, किंतु इस उपलब्धि पर विशेष गर्व करना कठिन है क्योंकि इस ओलंपिक का जिन 36 देशों ने बहिष्कार किया था, उनमें प. जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान और हॉलैंड जैसे शक्तिशाली हॉकी टीम वाले देश भी शामिल थे। इसलिए भारत की विजय सुनिश्चित और सुगम हो गई।

1984 के लास एंजिल्स ओलंपिक में भारत की टीम ने 1976 के निराशाजनक इतिहास को ही दोहराया। पदक सूची से भारत का नाम इस बार भी गायब रहा। आठ खेलों में भाग लेने के लिए हमारे 48 खिलाड़ी गए थे। यह टीम उस ओलंपिक की सबसे बड़ी टीम थी। फिर भी लगभग 700 पदकों के लिए जो प्रतियोगिताएं आयोजित की गई थीं, उनमें से एक भी पदक यह टीम भारत को नहीं दिलवा सकी। हमारी हॉकी टीम को पांचवां स्थान मिला।

1988 में ओलंपिक खेलों का आयोजन सिओल में हुआ। ग्यारह खेल प्रतियोगिताओं के लिए हमारे 69 सदस्यीय दल के बावजूद यहां भी पदक सूची से भारत का नाम गायब रहा।

1992 में पच्चीसवें ओलंपिक खेलों का आयोजन बार्सिलोना में किया गया। इसमें भाग लेने के लिए हमारी 80 सदस्यों की भारी भरकम टीम वहां पहुंची थी। 12 प्रतियोगिताओं में हमारे खिलाड़ियों ने भाग भी लिया, लेकिन किसी में भी वे अपनी उपस्थिति का अहसास तक नहीं करवा पाए तथा लगातार तीसरी बार वे बिना किसी पदक के स्वदेश लौटे।

26वें ओलंपिक 1996 में अमरीका के जार्जिया राज्य की राजधानी अटलांटा में संपन्न हुआ। इसमें भारत के 77 सदस्यीय दल ने भाग लिया। लेकिन इस भारी-भरकम संख्या के बावजूद हमारा प्रदर्शन यथावत निराशाजनक रहा। हमारी हॉकी टीम कुल 12 टीमों के बीच आठवें स्थान पर लुढक गई। उसके साफ-सुथरे प्रदर्शन पर अंतरराष्ट्रीय हॉकी टीम ने उसे 'फेयर प्ले ट्राफी' अवश्य प्रदान की। लॉन टेनिस में हमें कांस्य पदक मिला, लेकिन उसमें भी हमारे खिलाड़ी लिएंडर पेस की व्यक्तिगत सफ़लता ही अधिक थी, जिसने देश को लगातार चौथी बार पदकविहीन रहने से बचा लिया।

27वां ओलंपिक 2000 में सिडनी में आयोजित हुआ। इसमें भी भारत का प्रदर्शन निराशाजनक रहा। बड़ी-बड़ी डींगें बधारने वाली हमारी हॉकी टीम कोई करिश्मा नहीं दिखा सकी। केवल भारोत्तोलन में 240 किलो वजन उठाकर मल्लेश्वरी ने कांस्य पदक प्राप्त करके हमें पदक विहीन होने से बचा लिया, लेकिन पदक सूची में हमारा स्थान रहा लगभग आखिर में।

वर्ष 2004 में 28वां ओलंपिक एथेंस में आयोजित हुआ, जिसमें कुल 929 पदकों (301 स्वर्ण, 301 रजत तथा 327 कांस्य) के लिए 202 देशों के 10,500 से भी अधिक खिलाड़ियों ने भाग लिया। इसमें भारत की तरफ से 75 सदस्यीय प्रतियोगी दल ने भाग लिया। उपलब्धियों के नाम पर इस ओलंपिक में हमें केवल एक रजत पदक प्राप्त हुआ और पदक सूची में हमारा 66वां स्थान रहा। यह रजत पदक निशानेबाजी में मेजर राज्यवर्द्धन सिंह को प्राप्त हुआ। शेष सभी प्रतियोगिताओं में हमारा शो एकदम फ्लॉप रहा। इन प्रतियोगिताओं की तैयारी पर भारत सरकार को लगभग एक सौ करोड़ रुपये व्यय करने पड़े। भारतीय ओलंपिक संघ तथा अन्य खेल संघों द्वारा किया गया व्यय इससे अलग है।

वर्ष 2008 में 8 अगस्त से 24 अगस्त तक 29वां ओलंपिक बीजिंग में आयोजित हुआ। भारत की दृष्टि से इस आयोजन को एक सीमा तक संतोषजनक माना जा सकता है। इसमें हमारे 56 खिलाड़ी और 42 सहायक सदस्यों का दल पहुंचा था। यहां पर 28 वर्षों के बाद भारत ने पहला स्वर्ण पदक प्राप्त किया जो ओलंपिक इतिहास में भारत का व्यक्तिगत स्पर्धा में पहला स्वर्ण पदक था। इसे 10 मीटर एयर राइफल स्पर्धा भारत के 25 वर्षीय अभिनव बिंद्रा ने जीता। इस स्वर्ण पदक के अतिरिक्त कुश्ती के 66 किलोग्राम में भारत के सुशील कुमार ने तथा 75 किलोग्राम वर्ग में विजेंद्र कुमार ने कांस्य पदक ही जीते। इस प्रकार भारत को यहां तीन पदक प्राप्त हुए। फिर भी पदक सूची में उसका स्थान लगभग अंत में था।

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व के दूसरे बड़े देश की यह स्थिति निश्चित ही चिंतनीय है। ओलंपिक खेलों के निकट आते ही हमारी विभिन्न खेल टीमें, उनके खिलाड़ी और अधिकारी ओलंपिक खेलों में शामिल होने के लिए जोड़तोड़ भिड़ाने में मशगूल हो जाते हैं। वे अपनी पात्रता और विजय की संभावनाओं के बारे में भी लंबी-चौड़ी डींगे हांकते हैं। किंतु खेल के मैदान में जाते ही वे टांय-टांय

फिस्स हो जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है और शायद यही सत्य भी है कि ओलंपिक खेलों में जाने वाले अधिकांश खिलाड़ियों और व्यवस्थापकों की रुचि खेलों में उतनी नहीं होती, जितनी इस बहाने सैर-सपाटे और खरीदारी में होती है। जब खेल-परिणामों को लेकर उनकी आलोचना की जाती है तो प्राय: यह कहकर बहलाने की कोशिश की जाती है कि ओलंपिक खेलों का महत्व जीतने में नहीं, उनमें भाग लेने में है। उनके इस प्रकार भाग लेने से देश को कितनी आर्थिक क्षति होती है तथा हमारे राष्ट्रीय सम्मान को कितनी ठेस पहुंचती है, इसकी उन्हें शायद कोई चिंता नहीं होती।

ओलंपिक खेलों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने के लिए हमें सर्वप्रथम तो खिलाड़ियों के प्रशिक्षण और उनके सही चयन पर ध्यान देना होगा। आवश्यकता इस बात की है कि हर पंचायत और नगरपालिका स्तर पर खेलों की व्यवस्था हो और उनमें प्राय: खेल-प्रतियोगिताएं आयोजित कराई जाएं। अर्थाभाव की स्थिति में प्रारंभिक स्तर पर खेल संबंधी कम सुविधाओं से भी काम चलाया जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि खेल संबंधी व्यवस्था में राजनीतिक या अनावश्यक प्रशासनिक हस्तक्षेप कतई न हो। हमें सब कुछ खिलाड़ियों या खेल विशेषज्ञों की समझबूझ पर छोड़ना होगा। बावजूद इसके यदि हमारे खेल स्तर के अनुकूल नहीं रहते तो दोषी व्यक्ति के विरुद्ध हमें कठोर कार्यवाही करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। भद्दा प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ियों को आर्थिक दृष्टि से दंडित करने पर भी विचार किया जाना चाहिए। खेलों के विशेष ज्ञान से अपरिचित राजनेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों को इससे बिल्कुल अलग रखना चाहिए।

ओलंपिक खेलों में जाने वाली टीमों की व्यवस्था पर भी हमें पूरा ध्यान देना होगा। हमें यह देखना होगा कि केवल सैर-सपाटे के लिए असंबंधित और अनावश्यक व्यक्ति टीम के साथ न जाएं तथा वहां जाने वाले सभी अधिकारी अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह भलीभांति करें। इस संबंध में किसी प्रकार की लापरवाही सहन नहीं की जानी चाहिए।

यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ओलंपिक खेलों में हम केवल अपनी उसी टीम को भेजें, जो उसके स्तर के अनुरूप हो तथा जो पदक प्राप्त करने में सक्षम हो। यदि टीम की क्षमता पर तनिक भी शंका हो तो उस स्पर्धा में भाग नहीं लेना ही उचित और राष्ट्रहित की दृष्टि से न्यायसंगत होगा।

ओलंपिक खेलों में अपनी स्थिति सुधारने के लिए चीन का उदाहरण हमारे लिए अनुकरणीय है। प्रारंभ में ओलंपिक खेलों में चीन का भी प्रदर्शन अच्छा नहीं रहता था। इसे ठीक करने के लिए चीन ने कई वर्षों तक ओलंपिक खेलों में भाग नहीं लिया और खेलों को सुधारने के लिए अपनी तैयारियां जोर-शोर से जारी रखीं। अपनी तैयारियों से संतुष्ट होकर चीन ने 1984 से ओलंपिक खेलों में भाग लेना शुरू किया और तब से उसकी उपलब्धियों में निरंतर वृद्धि हो रही है। 2004 के एथेंस ओलंपिक में तो उसने 63 पदक प्राप्त करके, पदक सूची में अमरीका के बाद दूसरा स्थान प्राप्त किया। चीन में खेलों की तैयारी प्रारंभ से ही की जाती है। वहां स्कूलों में 10 वर्ष की आयु के मज़बूत कद-काठी वाले बच्चों का अलग से चयन कर लिया जाता है और उन्हें विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण में योग्य पाए जाने वाले बालकों को विशेष खेल के स्कूलों में दाखिला दिया जाता है और वहां उनकी प्रकृति, प्रवृत्ति और रुचि के अनुसार अलग-अलग स्पर्धाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। उन्हें प्रशिक्षण देने वाले व्यक्ति योग्य, कुशल, निष्ठावान और राष्ट्रहित की भावना से काम करने वाले होते हैं। इस लंबी प्रक्रिया से गुज़रने वाले खिलाड़ी ही ओलंपिक खेलों में भाग लेते हैं और वहां उनका उद्देश्य केवल खेलों में भाग लेना, धन कमाना या विदेशों में घूमना-फिरना नहीं होता। वे जीतने के लिए खेलते हैं और पदक लेकर ही स्वदेश लौटते हैं। ❑

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार एवं पत्रकार हैं)

(पृष्ठ 48 का शेषांश)

'ऐंटीमैटर' और 'पार्टिकिल डिटेक्टरों' के प्रयोगों के सामान्य अध्ययन से संभव हो सका है। अन्य अनेक चित्रण तकनीकें वाणिज्यिकीकरण के विभिन्न चरणों में हैं।

- सामानांतर कंप्यूटिंग

एक परमाणु भंजक के भीतर जो लाखों भिडंत होती है उनसे ढेर सारे आंकड़ें (जानकारियां) प्राप्त होते हैं। इनकी गणना के लिए एक भारी संगणक शक्ति की आवश्यकता होती है। इन आंकड़ों के विश्लेषण के लिए समानांतर प्रोसेसिंग और ग्रिड कंप्यूटिंग प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया। अब यह बाज़ार में उपलब्ध है।

- वर्ल्डवाइड वेब

सर्न का सबसे लोकप्रिय योगदान 'वर्ल्डवाइड वेब' है, जिसकी पेशकश सर्वप्रथम टिम बर्नर्स ली ने 1989 में की थी। 1991 में इसे सर्न पुस्तकालय के माध्यम से उच्च ऊर्जा-भौतिकशास्त्रियों के समुदाय को उपलब्ध कराया गया था। बाद में यह इंटरनेट के ज़रिये मुक्त रूप से उपलब्ध हो गया। इसके पीछे विचार था कि पीसी (पर्सनल कंप्यूटर) प्रौद्योगिकियों, सूचना नेटवर्क और हाइपर टेक्स्ट को एक वैश्विक सूचना प्रणाली से जोड़ दिया जाए।

- कैंसर चिकित्सा

कैंसर के इलाज़ में जो खोज हाल के दिनों में हुई है, उसमें हैड्रॉन कहलाने वाले कण को वेग प्रदान करने वाली तक़नीक का प्रयोग किया गया है ताकि पारंपरिक रेडियोथेरेपी के परिणामों में और सुधार लाया जा सके। हैड्रांस के प्रयोग का लाभ यह है कि वे अपनी राशि ऊर्जा एक ही बिंदु पर लगा देते हैं इससे स्वस्थ तंतुओं को क्षति पहुंचाए बिना ट्यूमर पर निशाना साधा जा सकता है। प्रोटोन थेरेपी कैंसर के इलाज का एक और तरीक़ा है, जिससे ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए लक्षित किया जा सकता है।

- सौर ऊर्जा

अति जटिल शून्य प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए सर्न ने एक नये प्रकार के चपटे सौर संग्राहक पैनल का विकास किया है और उसका व्यापक परीक्षण भी किया है। यह गर्म करने और ठंडा करने, दोनों के ही काम आ सकता है। इसका उपयोग पानी का खारापन दूर करने, फ़सलों को सुखाने और अन्य अनेक कार्यों के लिए किया जा सकता है। ये पैनल फोटोवोल्टिक कोशिकाओं के समान दक्षता से विद्युत उत्पादन करने में सक्षम हैं। ❑

शोध के लिए समर्पित जीवन

स्वर्गीय निताई दासगुप्ता एक ऐसे फ़ैबीकेटर थे जो जीवनपर्यंत अपने ग्राहकों और स्वयं की समस्याओं के समाधान के लिए प्रयासरत रहे। अपने आठ दशक की जीवनयात्रा में वे प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट मांगों के अनुसार उनका समाधान निकालने में व्यस्त रहे। वे लोगों की आवश्यकताओं को बड़ी आसानी से समझ लेते थे और उनका किफ़ायती परंतु उपयोगी समाधान ढूंढ निकालते थे। पांचवें द्विवार्षिक राष्ट्रीय नवाचार पुरस्कार समारोह 2009 में उन्हें पश्चिम बंगाल के सर्वश्रेष्ठ नवाचारी के रूप में सम्मानित किया गया और उन्हें राष्ट्रीय नवाचार प्रतिष्ठान (एनआईएफ) की ओर से पश्चिम बंगाल के सर्वश्रेष्ठ नवाचारी का पुरस्कार प्रदान किया गया।

निताई दास का जन्म 1931 में पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद ज़िले के बरहामपुर में हुआ था। उनके पिता एक चमड़ाशोधन कारखाने में श्रमिक थे। वे पढ़ाई-लिखाई में औसत थे। दरअसल, उन्हें पढ़ना-लिखना ज़्यादा पसंद नहीं था। परंतु अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान उन्होंने एक ऐसा अद्भुत हुनर सीखा, जो जीवनपर्यंत उनके साथ बना रहा। वे दोनों हाथ से लिख सकते थे और वह भी एक ही समय में साथ-साथ। निताई दास बाएं हाथ से लिखा करते थे। एक बार उनके शिक्षक ने चॉक लेने के लिए बायां हाथ बढ़ाने पर उनको सजा दी थी, क्योंकि स्थानीय रीति-रिवाज़ में बाएं हाथ का उपयोग अच्छा नहीं माना जाता था। शिक्षक ने उनसे दाएं हाथ से लिखने को कहा। इसके कारण उन्होंने दाएं हाथ से लिखने का अभ्यास शुरू किया। इसके साथ ही अन्य कार्यों के लिए भी वे दाएं हाथ का उपयोग करने लगे। इस अभ्यास के फलस्वरूप वे एक साथ, समान गति और सफ़ाई से दोनों हाथों से लिखने में पारंगत हो गए।

कतिपय आर्थिक समस्याओं ने आठवीं कक्षा के बाद उन्हें पढ़ाई छोड़ने के लिए मज़बूर कर दिया। 1942 में ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने साइकिल मरम्मत की एक दुकान खोली। कृषि योग्य भूमि न होने के कारण यही उनकी आय का प्रमुख स्रोत था। साइकिल की दुकान में काम करते-करते उन्होंने अनेक हुनर सिख लिए। वे एक स्व-शिक्षित टेकनीशियन और फैब्रीकेटर बन गए।

अपने 50 वर्ष के व्यापक अनुभवों से उन्होंने अनेक नये-नये उपयोगी प्रयोग किए और बहुतेरी वस्तुओं का निर्माण किया। पानी और ज़मीन में चलने वाले वाहनों से लेकर मनोरंजन पार्कों के लिए 'व्हील राइड्स' जैसे उपकरण बनाए। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में उन्होंने नये-नये प्रयोग करने बंद कर दिए और अपनी फैब्रीकेशन वर्कशॉप में श्रमिकों का मार्गदर्शन और देखरेख करने लगे। दासगुप्ता इंजीनियरिंग वर्क्स नाम की यह वर्कशॉप बहरामपुर रेलवे स्टेशन के पास स्थित थी, जहां वे अपनी पत्नी और तीन लड़कियों के साथ रहते थे।

नवाचारी कार्यों की गाथा

निताई अपनी वर्कशॉप में अपनी रोज़मर्रा के काम में लगे रहते और अपनी रोज़ी-रोटी कमाते। अचानक ही 1953 में उनके दिमाग में एक फितूर पैदा हुआ और उन्होंने दो लोगों द्वारा चलाई जाने वाली साइकिल बनाने की सोची। तीन महीनों में, उन्होंने पांच गियर वाली एक साइकिल बनाने में सफलता प्राप्त कर ली, जिसकी गति 30 किलोमीटर प्रतिघंटा थी। पांच गियर वाली प्रणाली सीधी सड़कों के साथ ढलान में भी समान रूप से काम करती थी।

इस सफलता से प्रोत्साहित होकर उन्होंने एक ऐसी बाइसिकिल बनाई जिसे तीन लोग एक साथ चला सकते थे। इस समय तक, वे अपने नये-नये प्रयोगों के लिए पूरे मुर्शिदाबाद ज़िले में लोकप्रिय हो चुके थे। उन्हें मनोरंजन पार्कों, सर्कस और ग्रामीण मेलों में इस्तेमाल होने वाली संरचनाओं के निर्माण के आर्डर मिलने लगे। वे पहियों के सेट्स, सर्कस में इस्तेमाल होने वाले विमानों के खिलौना मॉडल और दुर्गापूजा पंडालों में लगने वाले विशेष प्रकार के रिसाव (मस्तूल) का निर्माण और आपूर्ति करने लगे। वे अपने ग्राहकों की पसंद और मांग के अनुसार उपकरणों का निर्माण करने लगे और शीघ्र ही समूचे पश्चिम बंगाल और पूर्वी भारत में उनके बनाए उपकरणों/साजो-समान की मांग होने लगी।

पं. बंगाल में बार-बार आने वाली बाढ़ से वे भी परेशान होते थे। बाढ़ में सड़कें डूब जातीं और लोग कई-कई दिनों तक पानी में घिरे रहते। इसे देखते हुए उन्होंने एक ऐसा तिपहिया वाहन बनाने का निश्चय किया जो ज़मीन और पानी में समान रूप से चल सकता था। पानी भरी सड़कों में इसे पैंडल मारकर चलाया जा सकता था। इस उभयवाही तिपहिया वाहन को उन्होंने 'वालैंड' नाम दिया।

1999 में उन्होंने मोटरसाइकिल से चलने वाले एम्बुलेंस का निर्माण किया। दूर-दराज़ के गांवों से मरीज़ों को अस्पताल पहुंचाने के लिए इनका उपयोग होता था। इससे पूर्व, बिना पेट्रोल पंप वाले दूर-दराज़ के गांवों की समस्या को देखते हुए निताई दास ने साइकिल रिक्शा की तरह का एम्बुलेंस तैयार किया था, जिसे दो व्यक्ति चला सकते थे। बाद में, 2002 में, इसमें और सुधार करते हुए उन्होंने इसे चार लोगों द्वारा चलाए जाने वाले चौपहिया वाहन का आकार दिया। इसके परिवहन और घूमने-फिरने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता था। इस वाहन के बीच के भाग में एक जालीदार सामान रखने की जगह के अलावा एक अन्य यात्री के लिए बैठने की सुविधा भी दी गई थी।

दशकों तक मेलों और मनोरंजन पार्कों के लिए मशीनों और उपकरणों का निर्माण करते-करते निताई दास को इस्पात की संरचनाओं के निर्माण का व्यापक अनुभव हो गया। पुराने ढर्रों को छोड़कर उन्होंने नयी चुनौती स्वीकार करते हुए, 1995-96 में, मुर्शिदाबाद ज़िले के जांगीपुर में एक झूलने वाले पुल (सस्पेंशन ब्रिज) का निर्माण किया। उनका सौभाग्य था कि अपने इन प्रयासों में उन्हें अपने परिवार, मित्रों और पड़ोसियों से पूरा सहयोग मिला। पांच दशकों के अपने व्यवसाय के दौरान उन्होंने अच्छा नाम कमाया। उनके काम से लोग इतने प्रभावित थे कि विशेष प्रकार की सर्वथा एकाकी डिज़ाइन के उपकरणों के निर्माण के लिए लोग उनकी पूरी क़ीमत का अग्रिम भुगतान कर दिया करते थे और उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ करता था।

परंतु, उन्हें हमेशा ऐसा लगता था कि यदि निजी संगठनों और सरकारी एजेंसियों से वित्तीय सहायता मिली होती तो वे थोड़े समय में और भी बहुत कुछ कर सकते थे। इससे उनके प्रयोगों को और भी विस्तार मिल सकता था। ख़राब स्वास्थ्य के बावजूद निताई दास ने 2007-08 में पश्चिम बंगाल में संपन्न 20वीं शोध यात्रा में सपत्नीक भाग लिया। बढ़ती उम्र में भी उनके काम करने की लगन से बहुतों को प्रेरणा मिली।

शोध यात्रा में भाग लेने वाले शोधयात्रियों ने उनका स्वागत और सम्मान पूरे मनोयोग से किया। निताई दास गुप्ता ने जो नये उपकरण बनाए, उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :

मोटरसाइकिल चलित एम्बुलेंस

देश के दूर-दराज़ के गांवों में दुर्घटना के शिकार लोगों, गंभीर रोगियों और गर्भवती महिलाओं को आपात स्थिति में तत्काल अस्पताल पहुंचाने के लिए कोई साधन नहीं थे। ज़्यादातर अस्पताल शहरों में स्थित होते थे। ग्रामवासियों की दिक्क़तों को देखते हुए निताई ने सर्वप्रथ 1970 में एक मैनुअल एम्बुलेंस बनाया, जो साइकिल यांत्रिकी पर आधारित था और जिसे दो व्यक्ति चलाते थे। उसी वर्ष उन्होंने उसमें कुछ और सुधार करके एक ऐसा वाहन बनाया, जिसे एक व्यक्ति पैडल मारकर चला सकता था। इन वाहनों के निर्माण में कुल 15 दिन ही लगते थे और कुछ हज़ार रुपये ही ख़र्च होते थे, निताई ने दर्जन के भाव से इनका निर्माण और विक्रय शुरू कर दिया। निताई को 1999 में मुर्शिदाबाद के पुलिस अधीक्षक सुमन मित्रा से एक व्यावसायिक आर्डर मिला। उन्होंने मोटरसाइकिल से चलने वाले एक कम लागत के एम्बुलेंस का निर्माण का आग्रह करते हुए अग्रिम के तौर पर 20 हज़ार रुपये भी दिए।

दो मोटरसाइकिलें भी रेट्रोफिटिंग (जुगाड़) के लिए दी गईं। निताई ने केवल तीन महीनों में ही उन मोटरसाइकिलों को एक एम्बुलेंस जैसे ट्रेलर इकाई में फिट कर दिया। एम्बुलेंस में मरीजों की देखभाल की व्यवस्था की गई थी।

इस रोगी परिवहन इकाई (एम्बुलेंस) ने 2.5 होर्स पावर की मोटरसाइकिल लगी होती है, जो एम्बुलेंस की मानक सुविधाओं से सुसज्जित ट्रेलर को खींचती है। ड्राइवर के अतिरिक्त इसमें तीन लोग ले जाए जा सकते हैं। ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर आने-जाने के लिए इसमें एक सुधरा हुआ संस्पेंशन भी लगा होता है। एम्बुलेंस इकाई में पीछे की ओर दरवाज़े होते हैं। ऑक्सीजन सिलेंडर रखने की व्यवस्था होती है। फर्स्ट ऐड बॉक्स के साथ-साथ ड्रिप चढ़ाने की व्यवस्था भी होती है। इकाई में 1.5 फीट की ऊंचाई पर सहायक बैठ सकते हैं। 8 × 5 फीट के आकार के एम्बुलेंस केबिन को आवश्यकतानुसार मोटरसाइकिल से जोड़ा और अलग किया जा सकता है। केबिन में एक स्टैंड लगा होता है ताकि मोटरसाइकिल से अलग किए जाने पर वह सीधा खड़ा रह सके। एम्बुलेंस केबिन को मोटरसाइकिल से जोड़ने में 2 मिनट से भी कम समय लगता है। लगभग 40 किमी प्रतिघंटे की गति से चलने वाला यह मोटरसाइकिल चलित एम्बुलेंस रोगियों के परिवहन का क़िफायती साधन है। कुल 60 हज़ार रुपये की लागत से बना यह एम्बुलेंस पारंपरिक एम्बुलेंस की अपेक्षा अधिक क़िफायती है। निताई की बनाई हुई यह मोटरसाइकिल चलित एम्बुलेंस इकाइयां मुर्शिदाबाद में खूब इस्तेमाल हो रही हैं।

एम्बुलेंस (मानवचालित एम्बुलेंस)

सीमित साधनों के ग्रामीण चिकित्सालयों के लिए निताई ने एक ऐसे एम्बुलेंस का आविष्कार किया है जो एक या दो व्यक्ति द्वारा चलाया जा सकता है। दस किलोमीटर की दूरी तक एक व्यक्ति खींच सकता है जबकि उससे अधिक और अधिकतम 30 किमी की दूरी तक रोगी को पहुंचाने के लिए दो व्यक्तियों की ज़रूरत होती है। लगभग 10 किमी प्रति घंटे की गति वाला यह मानव चालित एम्बुलेंस बंगाल और बिहार के गांवों में काफी लोकप्रिय हुआ है।

उभयवाही तिपहया वाहन

निताई दास एक ऐसे क्षेत्र में रहते थे, जहां प्रतिवर्ष बाढ़ आती है और जिसमें अनेक लोग अपनी जान गंवा देते थे। बाढ़ग्रस्त इलाक़े से सुरक्षित स्थान पर तेज़ी से पहुंचने के लिए निताई ने 1954 में एक ऐसे तिपहिया वाहन का निर्माण करने का सोचा, जो जल और ज़मीन दोनों पर चल सकता था। धनाभाव के कारण 1958 से पूर्व वे इस पर काम शुरू नहीं कर सके। लगभग 7 हज़ार रुपये की लागत से तीन महीनों की अवधि में उन्होंने ऐसा वाहन तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली। जल और ज़मीन, दोनों पर समान रूप से चलने वाला यह उभयवाही वाहन 8 फीट लंबा, 4.5 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊंचा है और इसका भार 120 किलोग्राम है। 'वालैंड' नाम का यह वाहन मूलतः एक नौका है जिसमें तीन पहिये लगाए गए हैं। दो अगल-बगल और तीसरा सामने। दो सिलेंडरनुमा-फ्लोट दिए गए हैं, जो सड़क पर चलाते समय मोड़कर अंदर कर दिए जाते हैं। और जब पानी में चलाना हो तो इन फ्लोटों को नाव के दोनों ओर कस दिया जाता है जिससे वो तरण-क्षम भुजाओं के रूप में काम करने लगते हैं। स्टीयरिंग प्रणाली से युक्त आगे की सीट पर बैठे दो व्यक्ति इसे पैडल मारकर चलाते हैं। पैडलिंग इकाई से दो ब्लेड्स को घुमाया जाता है जो पानी में वाहन के प्रवोदक (प्रोपेलर) के रूप में काम करते हैं इसके पीछे की ओर भी दो व्यक्ति बैठ सकते हैं। इस वाहन का कठिन परीक्षण किया गया है। वर्ष 1959 में इसे सड़क मार्ग से बरहामपुर से कोलकाता ले जाया गया। वहां से उसे दिल्ली चलाकर ले जाया गया और फिर वहां से हरिद्वार। इस समूची यात्रा में 35 दिन लगे। पानी में इसे पहले बरहामपुर से ब्रह्मपुत्र नदी तक 700 किमी की यात्रा पर ले जाया गया। हरिद्वार से इसे कोलकाता तक जलमार्ग से लाया गया था। इस लंबी जलयात्रा में इसे 80 दिन का समय लगा। प्रारंभ में यह अधिक ध्यान नहीं आकर्षित कर सका। परंतु धीरे-धीरे इसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। वर्ष 1990 तक इसके बारे में 40 से अधिक आलेख प्रकाशित हो चुके थे। निताई दास ने 20 हज़ार रुपये में यह उभयवाही वाहन असम सरकार को बेचा और स्वयं अपने हाथों से तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रफुल्ल कुमार महंत को सौंपा।

दो व्यक्तियों द्वारा चलाई जाने वाली पांच गियर की साइकिल

1950 के दशक में निताई दास ने मानव चालित साइकिलों की विशेषताओं और अनुपयोगों का विस्तार करते हुए अनेक वाहनों का विकास किया। उभयवाही तिपहियां वाहन के बाद उन्होंने एक ऐसी साइकिल के विकास पर काम शुरू किया जो दो लोग चला सकते थे। सभी तरह के प्रकृत भूभाग (टेरेन) में चलाई जा सकने वाली इस साइकिल को चलाने में कम श्रम-बल लगाना पड़ता था।

पहला नमूना जो 1958 में बनकर तैयार हुआ, उसमें 26 इंच के मानक टायर और इस्पात के फ्रेम लगाए गए थे और उसका कुल वजन 60 किलोग्राम था। इसे दो लोग चला सकते थे। ढलान पर चलाने के लिए इसमें पांच गियर और एक विशेष ब्रेकिंग प्रणाली का उपयोग किया गया था। दो गियर का समतल मार्ग पर और शेष का उपयोग ढलान पर होता था। साइकिल में पांच स्प्रॉकेट लगाए गए थे और उसके मध्य में चेन में छोटा-सा ऐडजस्टर भी लगाया गया था। इसमें स्वचालित व्यवस्था नहीं थी। चालक को चढ़ाई पर चलने के लिए साइकिल से उतरकर आवश्यकतानुसार स्प्रॉकेट को सेट करना पड़ता था। आठ हज़ार रुपये की लागत वाली यह साइकिल आस-पास के क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय हुई।

चार लोगों द्वारा चलाई जाने वाला चौपहिया वाहन

वर्ष 2002 में स्थानीय पुलिस अधीक्षक ने निताई से एक ऐसा वाहन बनाने को कहा जो दक्षिण भारत में एक 'रोड शो' के लिए कई लोग चला सकें। जिला मजिस्ट्रेट सौरभ दास ने निताई का उत्साहवर्धन करते हुए उन्हें पांच हज़ार रुपये की आर्थिक सहायता भी दी। निताई ने 15 दिनों में यह काम कर दिखाया।

चार लोगों द्वारा चलाए जाने वाले इस वाहन का समग्र आकार 8 फीट लंबा, 3.5 फीट चौड़ा और 2.5 फीट ऊंचा है। इसका कुल वजन 80 किलोग्राम है। सामान रखने के लिए वाहन के मध्य में व्यवस्था की गई है। वाहन के परीक्षण के लिए चार लोगों ने इसे पूरे देश में घुमाया। बरहामपुर से मुर्शिदाबाद एवं मुर्शिदाबाद से चेन्नई (तमिलनाडु) तक की यात्रा दो महीने पांच दिन में पूरी हुई। वर्तमान में इस वाहन का कार्यशील मॉडल मुर्शिदाबाद के ज़िला मजिस्ट्रेट कार्यालय में रखा हुआ है। ❑

अनुकरणीय पहल

समृद्ध संस्कृति की मिसाल

● जिगमत लामो

जम्मू-कश्मीर राज्य के सुदूर उत्तरी क्षेत्र का लद्दाख शहर एक ऐसा क्षेत्र है जहां असमानता की शर्मनाक सीमाएं खत्म हो जाती हैं। हमारे यहां महानगरों में कन्या वध तथा महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों से ज्यादातर ख़बरें बनती हैं। परंतु लद्दाख में इन विकट परिस्थितियों के विपरीत महिलाओं की स्थिति एक शुष्क वातावरण में जीवंत क्षेत्र जैसी है।

इस क्षेत्र में पहले क़दम पर ही आपका स्वागत लद्दाख की महिलाओं की व्यापक और स्पष्ट मुस्कान द्वारा किया जाएगा। वे खिड़कियों से या घूंघट के पीछे से झांकने वाली महिलाएं नहीं हैं बल्कि वे कृषि क्षेत्र, शिष्टता, आत्मसम्मान व दृढ़-निश्चय पूर्वक खड़ी रहने वाली महिलाएं हैं। उनके चेहरे पर उनके चरित्र की ताक़त व उनकी मज़बूत संस्कृति की झलक साफ़ नज़र आती है।

परंपरागत रूप से लद्दाख की अर्थव्यवस्था वहां के लोगों के जीवन में हो रहे कार्यकलापों पर केंद्रित थी। इस क्षेत्र ने औपचारिक क्षेत्र की तुलना में एक बहुत अहम भूमिका निभाई है ताकि महिलाओं को सभी क्षेत्रों में सम्मानजनक दर्ज़ा मिल सके।

आज तक यह परंपरा स्वयंसहायता संगठनों के रूप में ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्र में जीवित है जोकि दूरदराज के गांवों में सक्रिय है और मुख्यत: महिला सदस्यों द्वारा ही संचालित हैं। 1974 में इस क्षेत्र का बाहरी दुनिया के लिए खुलने के साथ ही लद्दाख की पारंपरिक संस्कृति में आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं में बड़े पैमाने पर बदलाव आया। इस बदलाव से उन्हें अपने समुदाय की संस्कृति की रक्षा की ज़रूरत महसूस हुई जिसके कारण इस क्षेत्र में स्वयंसहायता समूहों का जन्म हुआ।

लद्दाख में लगभग 6-15 स्थानीय एवं छोटे-छोटे महिला समूह एक दोहरे उद्देश्य के साथ बदलते समय में महिला सशक्तीकरण, स्वदेशी संस्कृति और कृषि को मज़बूत बनाने के लिए एक साथ मिल गए हैं। अधिकतर महिलाएं गृहिणी होने के बावजूद अपने दैनिक कार्यों को पूरा कर समूह के लिए कार्य करती हैं। वे ऊन कताई, बुनाई (स्वेटर, दस्ताने, टोपियां आदि) और परंपरागत तरीक़े से ऊनी कपड़ों की रंगाई का काम करती हैं।

सबसे कठिन समय खेती का समय होता है। पुरानी पीढ़ी द्वारा निर्धारित प्रवृत्ति के अनुसार उसका पालन करते हुए सभी लोग कृषि क्षेत्र में बाक़ी सभी की मदद करते हैं। इस मौसम में इन मेहनती महिलाओं के लिए इस समुदाय का कार्य प्राथमिकता बन जाता है क्योंकि कृषि उपज कई स्वयंसहायता समूहों के उत्पादों के अनुसार तैयार होता है। खुबानी का जैम व धुरचुक का रस वहां सबसे अधिक आय के स्रोत हैं। इसके अलावा स्वयंसहायता संगठन सजावटी वस्तुएं एवं सर्दियों के कपड़े भी निर्मित करते हैं, जो लेह बाज़ारों में बिकते हैं। इस तरह से जो आय होती है उसका इस्तेमाल समाज और इसके सदस्यों के उत्थान के लिए किया जाता है।

ऐसा ही एक छोटा-सा समूह है 'शशि स्वयंसहायता समूह', जिसने अपनी शुरुआत चसहट गांव में छह सदस्यों से की थी। परंतु आज इस समूह में 15 महिला सदस्य काम करती हैं। इस समूह का सबसे आकर्षक पहलू

यह है कि यह न केवल महिलाओं को बल्कि समुदाय को भी लाभ देती है। इस समूह की अध्यक्ष अमीना खातून ने कहा, ''इस गांव में 5 साल तक काम करने के बाद हम न केवल अपने काम में बल्कि ग्रामीणों की जीवनशैली में भी सुधार लाने में कामयाब हुए हैं। हमने ग्रामीण मुद्दों पर जागरुकता प्रसार शुरू किया है। हम विभिन्न सरकारी विभागों के साथ मिलकर गांव के उत्थान के लिए कार्य कर रहे हैं।''

ये सभी समुदाय कुछ गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर ठंडे रेगिस्तान क्षेत्र की पहचान को पुनर्जीवित करने हेतु काम कर रहे हैं। लद्दाख के लगभग हर गांव में महिलाओं के गठबंधन से कुशलतापूर्वक काम होता है जिसको वहां की आम भाषा में 'अमा-त्सोग्स्पा' कहा जाता है, जिसकी शुरुआत 1991 में हुई थी। बुनाई, बागवानी व सिलाई इन सदस्यों का मुख्य आय स्रोत है। बुज़ुर्ग महिलाएं सक्रिय होकर विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में भाग लेती हैं जिससे वे नयी पीढ़ी को परंपरागत ज्ञान प्रदान करती हैं। इन दोनों में वे उनके पुरुष सदस्यों के साथ एक समन्वय बनाए रखती हैं।

हालांकि इन समूहों ने शहर से दूर होने के कारण व कच्चे माल एवं स्रोत की कमी होने के कारण काफी नुक़सान भी देखा है। ऊन, पश्मीना, खुबानी और धुरचुक वहां स्थानीय पैदावार हैं, परंतु इन सबसे बने उत्पाद केवल लद्दाख में ही बेचे जाते हैं अन्य राष्ट्रीय बाज़ारों में नहीं। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर इन उत्पादों की मांग भी ज्यादा नहीं है।

शशि स्वयंसहायता समूह की प्रशिक्षक ज़ारा बानो कहती हैं कि ''दक्षिणी क्षेत्र में रहने वाले एक मित्र से मैंने हस्तशिल्प कला सीखी है। जब मैं इस कला का प्रशिक्षण लेकर गांव वापस आई तो मैंने इस समुदाय में सिखाना शुरू कर दिया इस तरह से यहां शिक्षक का कार्य करने लगी। परंतु यहां हमें हस्तकला के लिए कच्चा माल नहीं मिलता है, इसलिए हम हमेशा अन्य मिलते-जुलते पदार्थों की ताक में रहते हैं।''

फरवरी और मार्च के महीनों में लेह का हस्तशिल्प विभाग, कपड़ा मंत्रालय (भारत सरकार), हस्तशिल्प विकास आयुक्त (विपणन) तथा लेह-लद्दाख के सेवा विस्तार केंद्र कार्यशाला का आयोजन करते हैं।

इन कार्यशालाओं में बड़ी तादाद में स्वयंसहायता समूह आगे बढ़कर भाग लेते हैं क्योंकि इनसे उनको कई नये रास्ते मिलते हैं तथा यह उनके कमाने का जरिया भी बनता है। यहां उन्हें बहुत कुछ सीखने को भी मिलता है।

लद्दाख निवासियों के जीवन में बदलाव आने का एक मुख्य कारण स्वयंसहायता समूह भी है। अगर इन संस्थाओं और समूहों को प्रशिक्षण दिया जाए तथा उत्पादों की बिक्री के लिए एक मंच तैयार हो जाए तो यह समाज में सामाजिक सुधार ला सकते हैं। इनको इतिहास में हमेशा एक योद्धा के रूप में देखा गया है- मज़बूत और समाज के प्रति प्रतिबद्ध। अपनी दक्षता में सुधार के द्वारा यह अपनी क्षमता को समाज के लाभ के लिए उपयोग कर सकते हैं। इन्होंने अपने धुंधले नक्शेक़दमों को बर्फ़ के रेगिस्तान पर खोदा है। प्रशासन के एक छोटे से समर्थन से पीढ़ियों का नेतृत्व करने के लिए यह क़दम मज़बूत व गहरे हो सकते हैं। ❑

ENGLISH

Muntosh Mishra ''भारत''

UPSC (Main) + CPF

7 Days' Trial Classes Free

★ Complete Grammar

★ स्वयं के विचार को Simple English मे लिखना सिखाने पर विशेष ध्यान।

★ Precis और Comprehension अपने शब्दों में लिखना सिखाने पर विशेष ध्यान।

★ (1987-2011) तक के UPSC (Main) के Precis और Comprehension के difficult words का हिन्दी Class में उपलब्ध

★ (2007-2011) तक के UPSC (Main) के Question का Solution Class में उपलब्ध

★ Class दुबारा करने पर कोई शुल्क नहीं

THE WELL™

THE SANCTUM OF SUCCESS

308, Top Floor, Jyoti Bhawan
In Front of Post Office
Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9

9811141396, 9899324319

YH-92/2012

सुशासन, ग़रीबी तथा लोकतंत्र : एक वैचारिकी

● अनीता सिंह

आज देश के सामने जो प्रमुख निर्णायक प्रश्न खड़े हैं उनमें अच्छा शासन या 'गुड गर्वनेंस' सबसे महत्वपूर्ण है। देश की विशालता उसकी सामाजिक और धार्मिक विविधता, परंपराएं और विश्व स्तर पर हो रही घटनाओं का दबाव हमारे समक्ष कई तरह की चुनौतियां प्रस्तुत कर रहा है। देश के प्रजातांत्रिक संविधान के तहत हमारी यह प्रतिबद्धता है कि भारत के हर नागरिक को गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने की व्यवस्था हो। समाज की एक स्वाभाविक अपेक्षा है कि आम आदमी को न केवल ज़रूरत की सभी चीज़ें मिलें बल्कि उसके विकास और समृद्धि की संभावना भी बनी रहे। यह दायित्व आज जनसंख्या विस्फोट के दबाव और उसके अनुरूप अपेक्षित संसाधनों की कमी के कारण एक बहुत बड़ी चुनौती बन गया है। इसके लिए सक्रिय और प्रभावी शासन तंत्र अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

अपने सामाजिक जीवन की यात्रा में मनुष्य ने आज जिस सभ्यता के उच्चतम पायदान को छुआ है, उसमें समाज की व्यवस्था के लिए कुछ पद्धतियों का निर्माण क्रांतिकारी था। झुंड और क़बीलों में रहने वाला आदमी शारीरिक शक्ति को ही सब कुछ मानता था और जिसमें सबसे ज्यादा ताक़त होती थी उसी का रुतबा रहता था।

दुर्भाग्य से देश के शासन को संचालित करने वाले कायदे-कानून अंग्रेज़ों के ज़माने से चले आ रहे हैं। उनमें से अधिकांश हमारी ज़रूरतों के हिसाब से ठीक नहीं हैं क्योंकि वे मूलत: एक उपनिवेश को चलाने के लिए बने थे। उनसे हमारी समस्याओं का ठीक से समाधान नहीं हो पाता है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह अनुभव होता है कि देश की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था में बहुत से सुधार लाने ज़रूरी हैं। साथ ही शक्ति केंद्रित होकर राजा और महाराजा की व्यवस्था शुरू हुई, जिसमें सत्ता एक व्यक्ति में केंद्रित रहती थी। बाकी सभी जनता या प्रजा की कोई आवाज़ नहीं रहती थी। राजशाही भी बहुत दिनों तक एकमात्र व्यवस्था के रूप स्वीकृत रही। इसमें आम आदमी की शासन में भागीदारी बहुत थोड़ी रहती थी। प्रजा का हित या अहित शासक की पसंद-नापसंद पर निर्भर करता था। प्रजा को प्रजा की दृष्टि से समझ पाना या न समझ पाना राजा की समझदारी और सहानुभूति का मोहताज रहता था। इसके विकल्प के रूप में जनतंत्र की व्यवस्था का बनना और उसका प्रयास मनुष्य के सामाजिक की महती उपलब्धि थी। जनतंत्र का दूसरा नाम 'प्रजातंत्र' भी है जिसमें प्रजा द्वारा प्रजा के लिए व्यवस्था बनाई जाती है, लागू की जाती है और उसकी सीमा में कर्तव्यों का संचालन और निगरानी भी की जाती है। राजशाही से प्रजातंत्र तक की यह यात्रा आसान न थी तथा आज भी विश्व के कई देश इस व्यवस्था से वंचित हैं और उन देशों की जनता अनेक प्रकार की यातनाएं सह रही हैं।

हम भारतवासी बड़े सौभाग्यशाली हैं कि आधुनिक युग में हमारा प्रजातंत्र न केवल अक्षुण्ण बना हुआ है बल्कि प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है। देश ने शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य और तकनीकी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है ऐसा होने पर भी हम यह दावा नहीं कर सकते कि देश में सब कुछ ठीक है। भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही आदि के कारण विकास के प्रयास उतने कारगर नहीं हो सके जितने होने चाहिए। उनका लाभ ग़रीबों और पिछड़ों तक नहीं पहुंच पाया। ग़रीबी, अशिक्षा अभी भी बनी हुई है और आम जनता अनेक कठिनाइयों से ग्रस्त है।

आज की तमाम समस्याओं और चुनौतियों को देखकर हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारी वर्तमान व्यवस्था सुशासन अर्थात अच्छे शासन की कसौटियों पर खरी उतरने वाली है। लोलुपता और ऊंची होती महत्वकांक्षाओं के कारण लोग नागरिकता के तकाज़ों को भूलते जा रहे हैं। वे अच्छे-बुरे किसी भी तरीक़े से अपने लिए लाभों को सुरक्षित रखना अपनी पहली प्राथमिकता मानते हैं। जहां सशक्त और समर्थ लोग इस तरह की जीवनशैली को अपनाते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर ग़रीब लोग उन मूलभूत अधिकारों से भी वंचित हैं जो उन्हें एक नागरिक और मनुष्य के रूप में स्वाभाविक रूप से सहजता से प्राप्त हैं। इन अधिकारों की स्वीकृति और उपयोग हमारे सामने एक बड़ी चुनौती है।

सामाजिक-आर्थिक विषमता में वृद्धि के साथ देश में मुक़दमों की संख्या में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हुई है। परिवारों का टूटना, गांवों से लोगों का मोहभंग और पलायन के कारण कई तरह की समस्याएं उभरी हैं। साथ ही धोखाधड़ी और घोटालों में भी बहुत ज्यादा बढ़ोतरी हुई है। इन मामलों का आयाम या मैगनीट्यूड कितना गुना बढ़ गया है यह सब लोगों को पता है। यह सब चौंकाने वाला है और इसके कारण पूरी व्यवस्था पर से आम आदमी का भरोसा उठता जा रहा है। आश्वस्त होने के स्थान पर वह ठगा-सा महसूस करने लगा है।

न्याय की प्रक्रिया बेहद ख़र्चीली होती जा रही है। इसके कारण न्याय के लिए गुहार लगाना सबके बस की बात नहीं रह गई है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि धनी और समर्थ लोग तो न्याय की व्यवस्था का लाभ उठाने में सफल हो जाते पर हैं किंतु ग़रीब आदमी की सुनवाई ही नहीं हो पाती है। न्यायिक सक्रियता के रूप में कुछ दिनों से जो पहल हो रही है उससे कुछ फर्क़ पड़ रहा है। जनहित याचिका (पीआईएल) के

(शेषांश पृष्ठ 72 पर)

म्यामां की अर्थव्यवस्था और भारत

● ओ.पी. शर्मा

म्यामां एशिया महाद्वीप का एक छोटा-सा देश है किंतु पिछले दिनों यह वैश्विक स्तर पर सुर्खियों में रहा है। इस देश में पांच दशक के सैनिक शासन के बाद यहां की सुविख्यात राजनीतिज्ञ और नोबेल पुरस्कार से सम्मानित आंग सान सू की के प्रयत्नों से लोकतंत्र की बयार बह रही है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और यहां बरसों से सर्वाधिक सफल लोकतंत्र है। इस दृष्टि से विश्व में भारत लोकतंत्र का प्रेरणास्रोत भी है। विश्व में जब कोई देश लोकतंत्र की दिशा में आगे बढ़ता है तब भारत उस देश से आर्थिक और राजनीतिक संबंध प्रगाढ़ करने के लिए तीव्रता से क़दम बढ़ाता है। इस बात की पुष्टि भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की मई 2012 में म्यामां की यात्रा से भी होती है।

भारत विदेश नीति में 'पूरब की ओर देखो' को गति देने में दृढ़प्रतिज्ञ है। पूरब में जापान, कोरिया जैसे विकसित और विकासशील देशों में अग्रणी चीन के अलावा बांग्लादेश, म्यामां जैसे पिछड़े देश भी शामिल हैं। भारत को 2008-09 से शुरू हुई अमरीकाजनित वैश्विक मंदी और उसके बाद यूरोप आर्थिक संकट से विदेश व्यापार के क्षेत्र में हुए भारी नुक़सान की भरपाई के लिए पूरब के देशों से आर्थिक संबंध बढ़ाने की दरकार है। म्यामां पूरब में मणिपुर के सरहद से सटा भारत का पड़ोसी देश है। म्यामां आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण देश है। म्यामां की स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में भारत ने इसके आर्थिक विकास में अधिक योगदान किया था। उस समय का बर्मा चावल, तेल, इमारती लकड़ी एवं जवाहरात का निर्यातक देश था। 1962 के तख़्तापलट ने बर्मा की तस्वीर बदल दी। वहां पांच दशक के सैनिक शासन के बाद अब जनतंत्र की ओर क़दम बढ़े हैं। इसका श्रेय म्यामां के राष्ट्रपति यू. थीन सीन और जनतंत्र समर्थक नेता ऑग सान सू की को जाता है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 27-29 मई, 2012 की अपनी तीन दिवसीय म्यामां यात्रा के दौरान सू की को पूरे विश्व में लोकतांत्रिक संघर्ष के लिए आदर्श व्यक्तित्व बताया। उनके दृढ़ निश्चय से विश्व को लोकतंत्र के संघर्ष के लिए प्रेरणा मिली है।

म्यामां की अर्थव्यवस्था

म्यामां विश्व बैंक द्वारा अर्थव्यवस्थाओं के वर्गीकरण में क्षेत्र और आय के अनुसार पूर्वी और पेसिफिक क्षेत्र में निम्न आय समूह के देशों में सम्मिलित है। निम्न आय समूह में ऐसे देशों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय 1,005 डॉलर और उससे कम है। म्यामां विश्व बैंक का सदस्य देश है। यह क्षेत्रफल की दृष्टि से बड़ा देश नहीं है इसका क्षेत्रफल 2007 में 6,76,580 वर्ग किलोमीटर था। भू क्षेत्र में कृषि भूमि का भाग 15.3 प्रतिशत तथा वन भूमि का भाग 49 प्रतिशत है। इस देश की समुद्रतट सीमा 1,930 किमी है। यहां आधारभूत संरचना का अभाव है। विमानपत्तन और टर्मिनलस, रेल घनत्व, सड़क आदि तुलनात्मक रूप से कम हैं।

म्यामां की जनसंख्या 2010 में 5 करोड़ थी। जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धिदर 2000-10 समयावधि में 0.8 प्रतिशत तथा जनसंख्या घनत्व 2009 में 77 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर था। कुल जनसंख्या में 0-14 आयु समूह का भाग 26 प्रतिशत है। वर्ष 2009 में जीवन प्रत्याशा पुरुषों की 60 वर्ष तथा महिलाओं की 64 वर्ष थी। प्रौढ़ साक्षरता दर 2009 में 92 प्रतिशत थी। प्रौढ़ साक्षरता में म्यामां की स्थिति भारत से बेहतर है। भारत में प्रौढ़ साक्षरता 2005 में केवल 61 प्रतिशत ही थी। म्यामां ने 'मिलेनियम डेवलपमेंट गोलस' में अच्छी प्रगति की है। ग़रीबी उन्मूलन तथा जीवनस्तर की दिशा में प्रगति हुई है। प्राथमिक शिक्षा पूर्णता अनुपात 2006 में 95 प्रतिशत था। जेंडर समानता में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में बालिकाओं एवं बालकों का नामांकन अनुपात 1991 में 97 से बढ़कर 2006 में 101 हो गया। बाल मुत्युदर में कमी आई है। पांच वर्ष से कम आयु की बाल मृत्युदर 1990 में 130 प्रतिहज़ार से कम होकर 2006 में 104 प्रतिहज़ार रह गई है। मातृत्व स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ है। 15-49 वर्ष की विवाहित महिलाओं में गर्भनिरोधी दर 1990 में 17 प्रतिशत से बढ़कर 2000-07 में 34 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2000-07 में जन्म के अवसर

पर प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की उपस्थिति 68 प्रतिशत थी।

आर्थिक विकास

आज म्यामां तेज़ गति से विकास करने वाला देश है। इस देश की सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धिदर 2000-07 के दौरान 9.2 प्रतिशत रही जो विश्व अर्थव्यवस्था की औसत वृद्धिदर 3.2 प्रतिशत की तुलना में बहुत अधिक है। इस समयावधि में निम्न आय समूह देशों की सघउ औसत वार्षिक वृद्धिदर 5.6 प्रतिशत थी। म्यामां ने निम्न आय समूह देशों की तुलना में तीव्र गति से आर्थिक विकास किया है। जहां तक भारत का सवाल है यह बड़ी अर्थव्यवस्था के साथ तीव्र गति से विकास करने वाला देश है। भारत की 2000-07 में सकल घरेलू उत्पाद की औसत वार्षिक वृद्धिदर 7.8 प्रतिशत थी। म्यामां ने भारत से भी अधिक ऊंची विकास दर से विकास किया है किंतु म्यामां की प्रतिव्यक्ति सघउ वृद्धिदर 2006-07 में 4.1 प्रतिशत थी जो भारत की प्रतिव्यक्ति सघउ वृद्धिदर 7.7 प्रतिशत की तुलना में कम थी। म्यामां का 2006-07 में प्रतिव्यक्ति सघउ वृद्धि विश्व अर्थव्यवस्था औसत 2.6 प्रतिशत से अधिक तथा निम्न आय समूह के 4.3 प्रतिशत के बराबर था।

विदेशी व्यापार

विदेशी व्यापार के मोर्चे पर म्यामां की स्थिति कमज़ोर है। इस देश का 2009 में निर्यात 6,710 लाख डॉलर तथा आयात 4,316 लाख डॉलर था। इस वर्ष व्यापार शेष 2,394 लाख डॉलर अनुकूल था। विश्व निर्यात में म्यामां का भाग केवल 0.04 प्रतिशत ही था जबकि विश्व निर्यात में भारत का भाग 1.5 प्रतिशत था किंतु भारत के लिए चालू खाता घाटा सदैव सिरदर्द बना रहा है। वहीं 2007 में म्यामां का चालू खाता अधिशेष 802 लाख डॉलर एक उपलब्धि है। म्यामां में 2009 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का शुद्ध अंतर्प्रवाह 323 लाख डॉलर रहा। म्यामां पर विदेशी ऋण का बड़ा बोझ है। वर्ष 2006 में विदेशी ऋण 6,828 लाख डॉलर था जो सकल राष्ट्रीय के वर्तमान मूल्य का 47 प्रतिशत तक जा पहुंचा। वर्ष 2009 में विदेशी ऋण 8,186 लाख डॉलर के स्तर को छू चुका था।

भारत म्यामां विदेश व्यापार

आज भारत बड़ी आर्थिक ताक़त और म्यामां उभरती अर्थव्यवस्था है किंतु वैश्विक आर्थिक संकटों ने अर्थव्यवस्थाओं को बुरी तरह प्रभावित कर दिया है। भारत की सकल घरेलू उत्पाद वृद्धिदर 2011-12 में तेज़ी से गिरकर 6.5 प्रतिशत ही रह गई है। विश्व व्यापार में म्यामां का भाग लगभग नगण्य है। ऐसी स्थिति में दोनों देश विदेशी व्यापार को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था की दशा को सुधार सकते हैं। भारत ने विदेश व्यापार नीति में 2014 तक निर्यात में 25 प्रतिशत वार्षिक वृद्धिदर का लक्ष्य निर्धारित कर रखा है। भारत ने विदेश व्यापार नीति 2009-14 के तहत 2012-13 वार्षिक अनुपूरक नीतिगत उपायों की घोषणा के साथ निर्यात को 20 प्रतिशत वृद्धि के साथ 360 अरब डॉलर तक पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। भारत ने 2011-12 में 20.9 प्रतिशत की वृद्धिदर से 303.7 अरब डॉलर का निर्यात किया था। वैश्विक मंदी के इस माहौल में भी निर्यात वृद्धि से उत्साहित भारत का उद्योग और वाणिज्य मंत्रालय 2013-14 तक वार्षिक निर्यात को 500 अरब डॉलर तक पहुंचाने के लक्ष्य को अर्जित करने के लिए आशान्वित है। इस लक्ष्य के लिए अमरीका, यूरोप, अफ्रीका और मध्य एशिया के बाज़ारों में निर्यात बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है। रोज़गार को बढ़ावा देने वाले क्षेत्रों के निर्यातकों को दो प्रतिशत ब्याज सब्सिडी और निर्यात कार्य के लिए पूंजीगत सामानों के आयात पर शून्य शुल्क की योजना को 2012-13 में जारी रखने की घोषणा की गई है।

भारत के विदेश व्यापार में एशिया और आसियान की महत्वपूर्ण भूमिका है। म्यामां आसियान का सदस्य देश है। भारत के निर्यात में आसियान का लगभग ग्यारह प्रतिशत हिस्सा है किंतु म्यामां को निर्यात बहुत कम होता है। भारत से म्यामां को निर्यात 2010-11 में 334 लाख डॉलर था जो भारत के कुल निर्यात का केवल 0.1 प्रतिशत ही था। भारत का म्यामां से आयात भी कम है। वर्ष 2010-11 में म्यामां से 1,018 लाख डॉलर का आयात किया गया था जो भारत के कुल आयात व्यापार का 0.3 था।

भारत म्यामां समझौता

विदेशी व्यापार के आंकड़े भारत म्यामां के बीच कम व्यापारिक संबंध को दर्शाते हैं। म्यामां पड़ोसी देश है। हाल ही में भारत ने म्यामां के साथ आर्थिक संबंध बढ़ाने की महत्वपूर्ण पहल की है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की मई 2012 में यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच 12 समझौतों पर हस्ताक्षर हुए है। इन समझौतों में म्यामां को 50 करोड़ डॉलर का ऋण, सीमा क्षेत्र विकास के लिए पांच वर्ष तक 50 लाख डॉलर प्रतिवर्ष की सहायता, म्यामां सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना में मदद, कृषि अनुसंधान व शिक्षा का आधुनिक केंद्र स्थापित करने में मदद, नैपीतों में चावल बायोपार्क बनाने में मदद, हवाईसंपर्क बढ़ाने पर समझौता, 2012-15 के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर समझौता, सैन्य अध्ययन पर समझौता, कोलकाता विश्वविद्यालय और डैगून विश्वविद्यालय के बीच शैक्षणिक सहयोग पर समझौता, संयुक्त व्यापार व निवेश फोरम की स्थापना पर समझौता तथा अंतरराष्ट्रीय अध्ययन संबंधी संस्थानों के बीच सहयोग पर समझौता प्रमुख है। इनके अलावा दोनों देशों के बीच 2015 तक द्विपक्षीय व्यापार को दोगुना करने पर भी सहमति हुई है।

भारत की महत्वपूर्ण पहल से म्यामां के साथ आर्थिक संबंध मज़बूत होंगे। इससे भारत द्वारा निर्धारित किए गए बढ़े निर्यात लक्ष्य को अर्जित करने में मदद मिलेगी। म्यामां के साथ आर्थिक संबंध बढ़ने से राजनीतिक संबंध भी सुधरेंगे। भारत के साथ आर्थिक संबंध म्यामां के लिए अधिक प्रासंगिक है। म्यामां भारत से विदेशी व्यापार बढ़ाकर अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन को दूर कर सकता है। म्यामां के साथ मई 2012 में हुआ समझौता इस दिशा में कारगर सिद्ध होगा। ❑

(लेखक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सवाई माधोपुर, राजस्थान में आर्थिक प्रशासन तथा वित्तीय प्रबंध विभाग में वरिष्ठ व्याख्याता हैं।

ई-मेल : opsomdeep@yahoo.com)

समय, साहित्य और साहित्यकार

● सरोज कुमार वर्मा

यद्यपि करने को मनुष्य समय को अपनी मुट्ठी में बांधकर अपने हिसाब से ख़र्च करने का दावा ज़रूर करता है, लेकिन सच्चाई यह है कि अभी का समय कहीं से आश्वस्त करने वाला नहीं है, उल्टे वह चिंतन ही करता है, क्योंकि दूसरे प्राणियों से पूछे बग़ैर अपनी श्रेष्ठता का दम भरने वाले मनुष्य ने समय के पन्नों पर ऐसा-ऐसा लिख दिया है जो कतई मानवता के हित में नहीं है। जैसे कि असंतुलित औद्योगिक विकास, आतंकवाद, लिंग भेद, सांप्रदायिकता आदि ढेर सारे ऐसे शब्द हैं जो समग्र मानव-कल्याण के विपरीत पड़ते हैं। इनमें कोई भी मानवीय सुरक्षा, स्वतंत्रता, समानता और प्रगति आदि की चिंता से जुड़ा हुआ नहीं है। वैसे इनको व्याख्यायित और प्रचारित इन चिंताओं से जुड़ी अवधारणाओं के रूप में ही किया जाता है; परंतु वास्तविकता यह है कि ये कुछ थोड़े-से समर्थ लोगों द्वारा शेष तमाम असमर्थ लोगों पर आधिपत्य जमाने और उन्हें गुलाम बनाने के माध्यम भी बने हैं।

इसकी वज़ह आधुनिक विकास की वह अवधारणा है जो केवल भौतिक समृद्धि पर आधारित है। इसलिए इस अवधारणा के मुताबिक जिस व्यक्ति अथवा देश के पास जितनी अधिक भौतिक संपदा होती है, वह व्यक्ति अथवा देश उतना ही विकसित कहलाता है और दूसरे व्यक्ति अथवा देश को विकसित होने के लिए वह संपदा प्राप्त करनी होती है। इस प्रकार विकास की इस अवधारणा ने एक ऐसी भोगवादी जीवन-पद्धति का निर्माण किया है जिसमें मनुष्य अधिक-से-अधिक भौतिक वस्तुओं का, यह देखे बग़ैर कि उनमें कौन-सी ज़रूरी हैं और कौन-सी नहीं, भोग कर लेना चाहता है। इस चाहत के कारण मनुष्य की सीमित ज़रूरतें असीम बन जाती हैं और वह उन्हें पूरा करने के दुष्चक्र में फंस जाता है।

इसी के साथ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि चूंकि विकास का यह ढांचा उद्योग पर आधारित है, इसलिए इसमें जटिल यंत्रों का ऐसा संजाल निर्मित होता है जो मानवता के शोषण का तंत्र बन जाता है। वर्तमान जीवन-पद्धति में यह हर तरफ देखा जा सकता है। यंत्र द्वारा वस्तुओं का बेतहाशा उत्पादन होता है और यंत्र के द्वारा ही उनके अनियंत्रित भोग के लिए लोगों को उकसाया जाता है। फिर यंत्र के आधार पर ही उत्पादन से लेकर वितरण तक की एक ऐसी केंद्रीकृत व्यवस्था निर्मित होती है, जिसमें अत्यधिक मुनाफ़ा के शृंखलाबद्ध अवसर उपलब्ध होते हैं। इसी अवसर के कारण उत्पादक उपभोग करने वाली जनता का शोषण करता है और यंत्र उसमें सहयोगी होता है।

इस प्रकार औद्योगिक विकास की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ही प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर दोहन और क्षरण होता है जो पर्यावरण-संकट का मूल कारण है। फिर विकास की इसी अवधारणा के आधार पर बाज़ार को फूलने-फलने का मौका मिलता है, जो भूमंडलीकरण के सपने को साकार करने में सहयोगी होता है। इसी क्रम में इस तथ्य का भी खुलासा किया जा सकता है कि विकास की इसी अवधारणा के अंतर्गत दुनिया को कई-कई बार नष्ट किए जाने लायक हथियार निर्मित किए जा चुके हैं और शिक्षा को मूल्य बोध के अपने मूल उद्देश्य से भटकाकर तक़नीक आधारित बनाते हुए सूचना को ज्ञान का पर्याय घोषित किया जा रहा है। इसी तरह आतंकवाद और राष्ट्रों की प्रतिद्वंद्विता की जड़ में भी विकास की यही अवधारणा है। इस प्रकार विकास की इस अवधारणा से जिस तरह के स्खलित मूल्य और जैसी सर्वनाशी सभ्यता निर्मित हुई है और हो रही है, अभी के समय की मूल समस्या वही है।

इसलिए अभी के समय में साहित्य का मूल दायित्व इस स्खलित मूल्य और सर्वनाशी सभ्यता से मुठभेड़ करना है और इसको उत्पन्न करने वाली औद्योगिक विकास की आधुनिक अवधारणा को ख़ारिज करना है। साहित्य के जिम्मे यह दायित्व इसलिए आ जाता है कि उसका चरित्र प्रतिरोधात्मक होता है। वह यथास्थितिवाद का समर्थन नहीं करता। वह पूरी निर्भीकता से गलत को गलत कहता है और सही का समर्थन करते हुए उसकी स्थापना का हर संभव प्रयास करता है। इसीलिए जहां इतिहास राजा-महाराजाओं का होता है वहीं साहित्य दबे-कुचलों का। इसका क्षेत्र केंद्र नहीं हाशिया होता है। यह सफलतम लोगों की स्तुति नहीं करता, असफल लोगों के हक़ की लड़ाई लड़ता है। अपने देश के स्वाधीनता-संग्राम से लेकर आपातकाल तक में साहित्य ने अपने इस दायित्व का निर्वाह किया है और दुनिया के अन्य देशों में भी वह इस दायित्व का निर्वहन करता रहा है।

यद्यपि कई बार साहित्य को इस दायित्व के निर्वहन से रोका गया है, सत्ता द्वारा उस पर बंदिशें लगाई गईं, परंतु बावजूद इसके वह कहीं किनारे पर बैठकर विलाप नहीं करने लगा है, बल्कि मुख्यधारा में बने रहकर हर प्रकार के अन्याय, अमानवीयता, शोषण और ज़ुल्म का प्रतिकार करता रहा है। आज भी इस त्रासद समय में उसे अपनी उसी भूमिका का निर्वाह करना है। उस दायित्व को पूरा करना है। वैसे आज साहित्य पर बंदिशें लगाने के बदले उसे सुविधाओं के दलदल में धंसा देने की मोहक साज़िश की जा रही है और कई साहित्यकार इसमें धंस भी रहे हैं, परंतु यह विचलन का समय नहीं है, मज़बूती से अपने पांव जमाते हुए इस प्रकार के तमाम षड्यंत्रों का पर्दाफ़ाश करना है। इसके लिए आवश्यक है कि औद्योगिक विकास की आधुनिक अवधारणा को नकारते हुए उसके स्थान पर मानवीय श्रम और पारस्परिक सहयोग को केंद्र में रखने वाली उस वैकल्पिक विकास की अवधारणा को स्थापित किया जाए जिसकी वकालत क्रोपाटकिन, गांधी और शुमाखर जैसे लोगों ने की है। इसमें विकास केवल बाहरी नहीं होता,

आंतरिक भी होता है। इसलिए इससे किसी भोगवादी सभ्यता के विकसित होने की सुविधा नहीं मिलती बल्कि सादगी और समानता पर आधारित सभ्यता के स्थापित होने का अवसर मिलता है। ऐसी सभ्यता आंतरिक समृद्धि पर आधारित होती है, केवल बाहरी सुख की खोज नहीं करती। यह केवल मनुष्य की सुरक्षा के प्रति ही जिम्मेवार नहीं होती बल्कि प्रकृति और पशु-पक्षी जैसे इतर प्राणियों की सुरक्षा की भी हिमायती होती है।

इसलिए यह सभ्यता अनियंत्रित भोग को प्रश्रय देते हुए बेतहाशा अर्थोपार्जन को महिमा-मंडित नहीं करती; न रंग, जात, संप्रदाय और राष्ट्र के खानों में मनुष्यता को बांटती है। इससे भूमंडलीकरण के प्रचार-प्रसार का न तो अवसर मिलता है, न बाजारबाद के फूलने-फलने का मौका। इससे आतंकवाद और पर्यावरण संकट का कोई ख़तरा भी पैदा नहीं होता, न जटिल यंत्र का कोई संजाल निर्मित होता है, जिससे शोषण का तंत्र विकसित हो सके। यह तमाम तरह के बंधनों से मुक्त समानता पर आधारित सभ्यता है जिसके पैरोकार कबीर, प्रेमचंद और नागार्जुन जैसे साहित्यकार रहे हैं। यह एक प्रकार की आध्यात्मिक सभ्यता है जो स्वयं का विस्तार सब में देखती है और 'सर्वे भवंतु सुखिन:' के मूल्य से संचालित होती है। अत: अभी के समय में मानवता के विपरीत जितने संदर्भ बन गए हैं उनके विध्वंस से बचने-बचाने के लिए मानवता के अनुकूल पड़ने वाली इस सभ्यता की स्थापना का कठिन दायित्व साहित्य के जिम्मे है। सुप्रसिद्ध कवि के. सच्चिदानंदन ने कहा भी है– ''साहित्य आत्म-जागरूकता के सामाजिक उपकरणों में से एक है। यह एक ऐसी खोज है जिसका प्रयोग वर्षों, यहां तक कि कालांतर में शताब्दियों तक किया जा सकता है। यह वास्तव में अस्तित्व की नवता के अनुसंधान की शुरूआत है।''

यह शुरूआत साहित्यकार स्वयं से कर सकता है। मगर विडंबना यह है कि अभी के साहित्यकार की स्वयं पर नज़र ही नहीं है। वह अपने साहित्य में जो कुछ करता है, वही अपने निजी जीवन में नहीं जीता। उसकी कथनी-करनी में फर्क होता है। लेखकीय धरातल पर जिन बुराइयों का विरोध करता है, अपने निजी जीवन में उन्हें अपनाकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है। इसी कारण उसके लिखे-कहे का किसी पर कोई असर नहीं होता। आमजन के पक्ष में लिखने वाला साहित्यकार इतने ख़ास ढंग से रहता है कि पढ़ने वाले पर उसके साहित्य का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। यह स्वाभाविक भी है। जो साहित्यकार स्वयं साहित्यकार को नहीं बदल पाता, वह दूसरे को क्या बदलेगा? जो साहित्यकार अपना लिखा-कहा हुआ खुद नहीं जीता, उसे दूसरे को क्यों जीना चाहिए? साहित्य में चलने वाले इस दोहरेपन के कारण साहित्य की क्षमता कुंद हो गई है। वह अपनी भूमिका से कट गया है, इसलिए अभी के समय में इस विडंबना को दूर करने का दायित्व भी साहित्य पर ही है। साहित्यकार अपना प्रामाणिक जीवन जीकर इस दायित्व को पूरा कर सकता है। ❑

(लेखक बीआरए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर में दर्शनशास्त्र के व्याख्याता हैं)

(पृष्ठ 68 का शेषांश)

मामलों में कई महत्वपूर्ण फ़ैसले हुए हैं जिनका व्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है, पर यह सब नाकाफ़ी है।

पिछले कुछ वर्षों में सिविल सोसायटी के संगठनों की सक्रियता और सरकार की रुचि के कारण सूचना का अधिकार और शिक्षा के अधिकार को लेकर कानून बने और उनका असर भी दिखने लगा है। परंतु सामाजिक जीवन के ऐसे बहुत सारे पहलू हैं जिनके बारे में गंभीर विचार-विमर्श कर कानून बनाने की और उसे अमली जामा पहनाने की ज़रूरत है। इसके साथ ही हम इस सच्चाई को नहीं नकार सकते कि अधिकांश कानून ठीक से लागू ही नहीं हो पाते और इसलिए वे अप्रभावी हो जाते हैं। इसका एक प्रमुख कारण है न्यायपालिका और कार्यपालिका की कार्यवाही और दायित्व के बीच आवश्यक तालमेल की कमी। कहना न होगा कि इन दोनों के बीच के रिश्ते राजनीति से गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं। आज के माहौल में राजनीति अक्सर छोटे और निजी लाभों में उलझ कर रह जाती है। इसके फलस्वरूप या तो कानूनों का दुरुपयोग होता है फिर या उनकी अनदेखी कर दी जाती है।

सुशासन का लक्ष्य है सभी लोगों का या पूरे व्यापक समाज का कल्याण सुनिश्चित करना। सबका हित क्या है? इस प्रश्न पर विचार करते समय अक्सर हम छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण भूल कर बैठते हैं। हम अपने सीमित स्वार्थ के कारण संकुचित दृष्टि अपनाने लगते हैं और सबके हित की ग़लत व्याख्या कर बैठते हैं। हम अपना-पराया देखने लगते हैं और अपने हित को ही सबका हित सिद्ध करने लगते हैं। सारी राजनीतिक लड़ाइयां इसी तरह की होती हैं। सभी राजनीतिक पार्टियां अपने आप को देश से जुड़े हर प्रश्न और समस्या पर पशोपेश में पाती हैं कि वे क्या रुख अपनाएं उनका नज़रिया अलग-अलग होता है। इसका परिणाम हमारे सामने है- बहुत सारे महत्वपूर्ण मुद्दों पर हम आवश्यक कानून को संसद में पास नहीं करवा पा रहे हैं। आज देश की समस्याओं पर छोटे स्वार्थों से ऊपर उठकर देशहित को व्यापक और समावेशी दृष्टि से देखने की ज़रूरत है और अपने अंदर ईमानदारी से देखने की ज़रूरत है। देश के प्रति निष्ठा सर्वोपरि होनी चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों में हम सबने अनुभव किया है कि न्यायपालिका का संबंध मात्र दीवानी और फौजदारी की अदालतों में मुकदमों का फ़ैसला तक सीमित न रहकर पर्यावरण, संविधान, शिक्षा, प्रशासन और शासन की नीतियों तक व्यापक होता जा रहा है। आज हर तरफ से निराश होकर न्यायालय की ओर समाज के सभी वर्गों की आशाभरी आंखें लगी रहती हैं और ऐसे में कई बार न्यायालय अपनी परंपरागत भूमिका से अलग हटकर काम करते नज़र आते हैं। इसकी आलोचना भी सुनने को मिलती है किंतु ऐसे हालात ही तब पैदा होते हैं जब शासन की नीति या प्रक्रिया में कोई कमी होती है या वह निष्क्रिय होती है। दूसरे शब्दों में कहें, तो जब हम सुशासन के लक्ष्य से दूर भटक जाते हैं तो न्यायपालिका का दायित्व बढ़ जाता है।

आज हम सभी को यह सोचने की महती आवश्यकता है कि किस तरह न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका अपने निर्धारित दायित्वों का निर्वाह देशहित में सतर्क रूप से करने में समर्थ हो सके। ❑

(लेखिका पांडिचेरी विश्वविद्यालय में प्रवक्ता हैं।)

(कवर II का शेषांश)

श्री मुखर्जी सन 1982 से 1984 में अलग-अलग मंत्रालयों में कैबिनेट मंत्री रहें और सन 1984 में भारत के वित्तमंत्री बने। वर्ष 1984 में *यूरोमनी* पत्रिका के एक सर्वेक्षण में उनका विश्व के सबसे अच्छे वित्तमंत्री के रूप में मूल्यांकन किया गया।

श्री मुखर्जी ने श्री नरसिंह राव के मंत्रिमंडल में 1995 से 1996 तक पहली बार विदेश मंत्री के रूप में कार्य किया। 1997 में उन्हें उत्कृष्ट सांसद चुना गया।

1985 के बाद से वह कांग्रेस की पश्चिम बंगाल राज्य इकाई के भी अध्यक्ष रहे। जंगीपुर लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से पहली बार लोकसभा चुनाव जीतने वाले श्री प्रणब मुखर्जी को लोकसभा में सदन का नेता बनाया गया। उन्हें रक्षा, वित्त, विदेश मंत्रालय, राजस्व, नौवहन, परिवहन, संचार, आर्थिक मामले, वाणिज्य और उद्योग समेत विभिन्न महत्वपूर्ण मंत्रालयों के मंत्री होने का गौरव भी हासिल है।

10 अक्तूबर, 2008 को श्री मुखर्जी और अमरीकी विदेश सचिव कोंडीकोजा राइस ने धारा 123 समझौते पर हस्ताक्षर किए। वे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक और अफ्रीकी विकास बैंक के प्रशासक बोर्ड के सदस्य रह चुके हैं।

1984 में उन्होंने आईएमएफ और विश्व बैंक से जुड़े ग्रुप-24 की बैठक की अध्यक्षता की। मई और नवंबर 1995 के बीच उन्होंने सार्क मंत्रिपरिषद सम्मेलन की अध्यक्षता की।

24 अक्तूबर, 2006 को उन्हें भारत का विदेश मंत्री नियुक्त किया गया।

श्री मुखर्जी की वर्तमान विरासत में अमरीकी सरकार के साथ असैनिक परमाणु समझौते पर भारत-अमरीका के सफलतापूर्वक हस्ताक्षर और परमाणु अप्रसार संधि पर दस्तख़त नहीं होने के बावजूद असैन्य परमाणु व्यापार में भाग लेने के लिए परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह के साथ हुआ हस्ताक्षर शामिल है। सन 2007 में उन्हें भारत के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' से नवाज़ा गया।

डॉ. मनमोहन सिंह की दूसरी सरकार में श्री मुखर्जी भारत के वित्त मंत्री बने, इस पद पर वे इससे पहले 1980 के दशक में काम कर चुके थे। 6 जुलाई, 2009 को उन्होंने सरकार का सालाना बजट पेश किया। इसमें उन्होंने (क्षुब्ध

करने वाले) फ्रिंज बेनिफिट टैक्स और कमोडिटीज ट्रांजक्शन कर को हटाने सहित कई तरह के कर सुधारों की घोषणा की। उन्होंने एलान किया कि वित्त मंत्रालय की हालत इतनी अच्छी है कि माल और सेवा कर लागू कर सके, जिसे महत्वपूर्ण कॉरपोरेट अधिकारियों और अर्थशास्त्रियों ने सराहा। उन्होंने राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम, लड़कियों की साक्षरता और स्वास्थ्य जैसे सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं के लिए अतिरिक्त धन का प्रावधान किया। इसके अलावा उन्होंने राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम, बिजलीकरण का विस्तार और जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन की तरह बुनियादी सुविधाओं वाले कार्यक्रमों का भी विस्तार किया। ❑

प्रकाशक व मुद्रक ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रभारी) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। संपादक : रेमी कुमारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
26 जुलाई, 2012 को प्रकाशित • 29-30 जुलाई, 2012 को डाक द्वारा जारी

नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

अब बाजार में उपलब्ध

संघ एवं राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के सामान्य अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभदायक सामग्री. विभिन्न विश्वविद्यालयों के **भारतीय अर्थशास्त्र** के प्रश्न-पत्र के लिए भी उपयोगी.

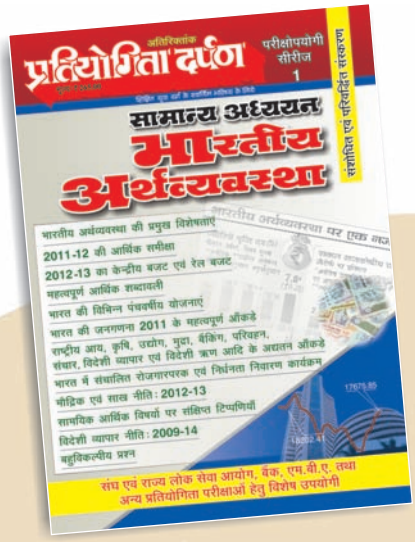

मूल्य
₹ 265.00

Price
₹ 275.00

टॉपर्स की राय में...

➥ मैंने अर्थव्यवस्था का विशेषांक पढ़ा है. यह अपने आप में बेजोड़ एवं तैयारी के क्रम में पठनीय अनिवार्य पुस्तक है.
—विवेक अग्रवाल
सिविल सेवा परीक्षा, 2011 में उच्च स्थान पर चयनित

➥ मैंने प्रतियोगिता दर्पण के अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक का अध्ययन किया है जो मेरे लिए तैयारी के दौरान काफी उपयोगी साबित हुआ है.
—शिव सहाय अवस्थी
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में हिन्दी माध्यम से प्रथम स्थान

➥ प्रतियोगिता दर्पण का भारतीय अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक तो मेरा पसंदीदा है. प्रारम्भिक और मुख्य दोनों परीक्षाओं के लिए मैं काफी हद तक इस पर निर्भर रहा हूँ. अन्य अतिरिक्तांक भी काफी उपयोगी हैं.
—राहुल कुमार
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में हिन्दी माध्यम से प्रथम स्थान

➥ मैंने प्रतियोगिता दर्पण की सामान्य अध्ययन के अतिरिक्तांक सीरीज पढ़ी. मैंने राजव्यवस्था व अर्थशास्त्र अतिरिक्तांक को अधिक उपयोगी पाया. अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक कम श्रम व समय में भी अच्छी तैयारी कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.
—राकेश कुमार सिंह
उ.प्र. राज्य सिविल सेवा, 2009 में सर्वोच्च स्थान

➥ अतिरिक्तांकों में—अर्थशास्त्र, राजव्यवस्था एवं समाजशास्त्र के अंक संग्रहणीय हैं. अर्थशास्त्र अंक की उपेक्षा करना सीधे-सीधे असफलता को आमंत्रित करना है.
—नमः शिवाय अराजरिया
म.प्र. राज्य सेवा परीक्षा, 2009 में प्रथम स्थान

मुख्य आकर्षण

* भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं * महत्वपूर्ण आर्थिक शब्दावली * भारत की जनगणना 2011 के महत्वपूर्ण आँकड़े * राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, मुद्रा, बैंकिंग, परिवहन, संचार, विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण आदि के अद्यतन आँकड़े * मौद्रिक एवं साख नीति 2012-13 * 2012-13 का केन्द्रीय बजट एवं रेल बजट * विदेशी व्यापार नीति 2009-14 * भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं * भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्धनता निवारण कार्यक्रम * प्रमुख केन्द्रीय मंत्रालयों के नवीनतम प्रतिवेदनों पर आधारित महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री * सामयिक आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ * महत्वपूर्ण बहुविकल्पीय प्रश्न.

आज ही अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से सम्पर्क कर अपनी प्रति सुरक्षित कराएं

प्रतियोगिता दर्पण
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – **282 002** फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
Website : www.pdgroup.in E-mail : care@pdgroup.in
ब्रांच आफिस : • नई दिल्ली फोन : 011-23251844/66 • हैदराबाद फोन : 040-66753330
To purchase online log on to **www.pdgroup.in**

YH-85/2012